शोधादर्श

55

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सह – सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन

प्रकाशक :
तीथकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ– २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -५५

वीर निर्वाण संवत् २५३१ **मार्च २००५ ई.**

विषय क्रम

१. गुरुगुण-कीर्तनः श्री अगरचन्द नाहटा	श्री रमा कान्त जैन	१
२. बड़नगर और उसका पुरातत्त्व	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	६
३. सम्पादकीय : समाधिमरण	श्री अजित प्रसाद जैन	८
४. जैन संस्कृति में कौशाम्बी	डॉ. शशि कान्त जैन	११
५. मेरे प्यारे महावीर	श्री लूणकरण नाहर जैन	१४
६. सूचना		१४
७. भगवान महावीर का जन्म स्थल : एक पुनर्विचार	डॉ. सागरमल जैन	१५
८. रयणचूडरायचरियं में वर्णित कलाएं	डॉ. हुकमचंद जैन	२४
९. जैन कला में नाग-आकृतियाँ	डॉ. विमला जैन 'विमल'	२९
१०. अनेकान्तवाद और पर्यावरण	पं. सुनील जैन 'संचय'	३४
११. जैनधर्म की प्राचीनता के वैदिक प्रमाण	श्रीमती मीनाक्षी जैन	३६
१२. समस्त भारत के दिग. जैन मन्दिर, उनके अध्यक्ष एवं मंत्री कृपया ध्यान दें		४१
१३. प्राकृत काव्यों में मुक्तक का स्थान	श्री रजनीश शुक्ल	४२
१४. इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	श्री रमा कान्त जैन	४७

१५. कैलाशभूषण जिंदल-एक समर्पित व्यक्तित्व	श्रीमती सुधा जिन्दल	४६
१६. धर्म को सत्य पर कसिये	महात्मा भगवानदीन	५१
१७. मुक्तक	डॉ. महावीरप्रसाद जैन 'प्रशांत'	५१
१८. दिगम्बरत्व की मर्यादा	महात्मा गांधी	५२
१६. संयुक्त परिवार सुरक्षा भाव देता है	डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी	५३
२०. ऐसे भी होते हैं इन्सान	साहू शैलेन्द्र कुमार जैन	५४
२१. समाचार विमर्श:		
रईसों का एक जैन साप्ताहिक समाचार पत्र	श्री अजित प्रसाद जैन	५५
अंध श्रद्धा के घातक कदम	श्री कैलाशचंद जैन	५५
२२. नहीं चाहते अगर भटकना (गीत)	डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया	५६
२३. मैं : एक सावधान मनीषी (आत्म व्यंग्य)	श्री सुरेश जैन 'सरल'	५७
२४. सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	श्री रमा कान्त जैन	५८
२५. मुक्तक	सन्त ॐ पारदर्शी	५८
२६. साहित्य-सत्कार :		
प्राकृत एवं जैन विद्या : शोध सन्दर्भ; Basic Jain Culture Non-possession	डॉ. शशि कान्त	५६
महाप्रभा स्मृति-ग्रन्थ; बीसवीं शताब्दी की जैन विभूतियां; पावन सिद्धक्षेत्र शौरीपुर एवं बटेश्वर अतिशय क्षेत्र; महावीर की जन्मभूमि-कुण्डपुर; ऊषा! तुम कौन; दीपमाला जलाओ; यह मेरा हिन्दुस्तान नहीं; Meri Bhavana	श्री रमा कान्त जैन	६०
२७. प्रेरक प्रसंग	श्री रमा कान्त जैन	६४
२८. कृपया ध्यान देवें- शोधादर्श के ग्राहकों से विनम्र अनुरोध		६४
२६. समाचार विविधा		६५
३०. स्वास्थ्य चर्चा		६८
३१. अभिनन्दन		६६
३२. शोक संवेदन		७१
३३. आभार		७१
३४. पाठकों के पत्र		७२

श्री अगरचन्द नाहटा

अगरचंद सुकृत 'उदय', सम्पति गृह सरसात।
रहै प्रेम सुखशांति जय, सदा धर्म के साथ।।१।।
अगरचंद सेवा 'उदय', उज्जवल राजस्थान।
डूबत साहित्य देशको, करत उद्धार महान।।२।।

– श्री उदयराज ऊजल

श्री शारदा दोनों मिलकर करती जिसका अभिनन्दन।
अमृत-सागर ज्ञान-सुधाकर अगरचन्द जी कौ वन्दन।।

– श्री प्यारेलाल श्रीमाल 'सरस'

अभिनन्दनीय आदर्श पुरुष ! उद्‌भट विद्वत्ता-महा धाम।
अमृत बरसाता रहे सदा शुभ अगरचंद यह अमर नाम।।

– श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ

'अगरचंद नाहटा' सा जन बना हृदय का हार है,
ऐसे ज्ञानज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है।

– श्री विमल कुमार जैन सोंरया

इतना दिया पुस्तकालय को साहित्यिक भण्डार
नित मुमुक्षु जग पायेगा, नव अन्वेषण के द्वार
शिक्षा-पट पर लिखे रहेंगे, यह समस्त उपकार
जो प्रशस्तियां लुप्त प्राय थीं किया पुनर्उद्धार
पूरा जीवन निर्विकार, 'साहित्यिक सेवा ग्राम'
विश्वकोश में अमर रहेगा, अगरचन्द का नाम।।

– श्री कल्याणकुमार 'शशि'

सन् १९७६ ई. में प्रकाशित 'अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ' से ऊपर उद्‌धृत काव्यांशों में जिन महामना अगरचन्द नाहटा का अभिनन्दन किया गया है, उनके साक्षात् दर्शन से अछूता रहते हुए भी उनकी लिखावट से मेरा परिचय किशोरावस्था से ही रहा है। उनके पत्र अक्सर मेरे पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जी के पास आते रहते थे जिन्हें बांचने-समझने में मन-मस्तिष्क को प्रायः शीर्षासन लगाना

पड़ता था। उन पत्रों में जहाँ जिज्ञासु का हृदय समाया रहता था वहीं ज्ञानप्रदाता बुद्धि भी मुखरित रहती थी। संभव है काल की कृपा और दीमकों की दया से बचे रह गये उनके कुछ पत्र पिताजी की किसी अलमारी के कोने में अभी भी दुबके पड़े हों।

उत्तुंग शिखर मारवाड़ी पगड़ी, उन्नत ललाट, निर्मल नेत्रों और सघन भौंहों के ऊपर ऐनक और उसके नीचे अन्वेषणरत सूक्ष्मग्राहिणी दृष्टि, महापुरुषलक्षणोपेत कर्णरोम, सुन्दर स्थूलनासिकोष्ठ, बलखाती सघन निर्दंभ मूँछें, भव्य गौरवमयी मुखाकृति, व्यूढोरस्क वृषस्कन्ध, भारी शरीर, सामान्य कद, बन्द गले का लम्बा कोट, उस पर पड़ा आवर्त्तक सुखासीन श्वेत उत्तरीय, राजस्थानी विधि से परिधीत धौत वस्त्र, ऊँची धोती और साधारण जूते, यह है एक चित्र अगरचन्द नाहटा जी का। श्री उपध्यान चन्द्र कोचर के शब्दों में, "सिर पर ठेठ बीकानेरी ओसवाल बनियों की पगड़ी पहने अगरचन्द नाहटा पहली बार में एक पुरातन शोध ग्रंथ ही लगते थे।" उन्हें और उनकी वेश-भूषा को देखकर अपरिचितों को यह पहचानना कठिन हो जाता था कि वह ही ज्ञान के भण्डार नाहटा जी रहे। इस सम्बन्ध में एक रोचक संस्मरण श्री रामदेव आचार्य का 'धर्मयुग' में छपा था जो सत्य था और नाहटा जी के व्यक्तित्व का परिचायक भी।

बीकानेर में चैत्र कृष्ण चतुर्थी विक्रम संवत् १९६७ (१९ मार्च, १९११ ई.) को श्वेताम्बर मूर्तिपूजक ओसवाल जातीय मारवाड़ी व्यापारी सेठ शंकरदान नाहटा की पुत्रसंतति में कनिष्ठिकाधिष्ठित अर्थात् पाँचवे नम्बर पर जन्मे और बीकानेर में ही १२ जनवरी, १९८३ ई. को लगभग ७२ वर्ष की वय में दिवंगत हुए अगरचन्द वस्तुतः मरुभूमि में खिले पुष्प थे। उनकी माता जी का नाम चुन्नीबाई था। आषाढ़ कृष्ण १२ वि.सं. १९८२ (१९२५ ई.) को उनका विवाह श्री मोढ़सीदास सेठिया की पुत्री पन्नीबाई से हो गया। उनके जेठीबाई, शान्तिबाई, किरणबाई, संतोषबाई और कान्ताबाई नामक पाँच पुत्रियाँ तथा धर्मचन्द और विजयचन्द नामक दो पुत्र हुए।

स्वयं नाहटा जी के कथनानुसार उनकी स्कूली शिक्षा तो कक्षा ५ तक ही रही और तदनन्तर वह अपने पैतृक व्यापार में लग गये। वि.सं. १९८१ (१९२४ ई.) में १३ वर्ष की वय में सगाई होते ही व्यापार कार्य सीखने के लिये कलकत्ता (कोलकाता) भेज दिये गये जहाँ पहले से आर्मेनियन स्ट्रीट पर नाहटा बन्धुओं की व्यापारिक गद्दियां थीं। उनके मामाद्वय मंगलचन्द जी और भागचंद जी तथा अन्य रिश्तेदार उन गद्ददियों का कार्य देखते थे। अपने मामाओं से अगरचन्द जी ने माल मिलाना, कपड़े की गाँठें बाँधना, खाता-रोकड़ लिखना, माल खरीदना-बेचना आदि सभी व्यापारिक कार्य सीखे और सर्वसुख नाहटा जी से **शत्रुञ्जयरास** व **गौतमरास** आदि का पाठ। एक कुशल

व्यापारी बन अपने नाम से ही बीकानेर से कोसों दूर कपड़े और गल्ले आदि के सात व्यापारिक प्रतिष्ठान-३ सिलहट, १ थापड़, १ बोलपुर, १ बाबुरहाट और १ मुम्बई में स्थापित करने का श्रेय उन्हें रहा।

यूं तो धर्मग्रन्थों को सुनने की रुचि और धार्मिक विषयों को लेकर तुकबन्दी (कविता) करने की प्रवृत्ति अगरचन्द जी में अपने पाठशालीय जीवन से ही थी और घर वाले उन्हें 'कवि सम्राट' कहकर पुकारते थे, किन्तु उनके किशोर मानस में दबे पड़े विद्यानुराग के बीज को सिंचित और अंकुरित करने का श्रेय श्री जिनकृपाचन्द सूरि को है जो संवत् १९८४ (सन् १९२६ ई.) की बसन्त पंचमी को बीकानेर पधारे थे। सूरिजी के प्रवचनों और व्यक्तित्व ने उन्हें प्रभावित किया। उनसे अपनी अनेक शंकाओं का समाधान प्राप्त कर वह शीघ्र ही परम श्रद्धालु भक्त-कवि श्रावक बन गये तथा उनमें विद्यार्जन, साहित्य-साधना और शोध-कार्य करने की अद्भुत ललक जग गई। बाल्यकाल में अपनी पाठ्यपुस्तकों में उन्होंने पढ़ा था-

"करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जाततैं, सिलपर परत निसान।।"

इस दोहे ने उन्हें ऐसा अभिभूत और प्रेरित किया कि विद्याव्यसन लगने पर बिना किसी मार्गदर्शक और सहायक के स्व अध्यवसाय से ही भारत की विभिन्न लिपियों और भाषाओं को सीख उनमें पारंगत हो गये। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी, अर्धमागधी, हिन्दी, मारवाड़ी (राजस्थानी), बंगाली, गुजराती, असमी आदि विभिन्न भारतीय भाषाओं में निबद्ध अनेक धार्मिक एवं लौकिक ग्रन्थों का उन्होंने पारायण किया। स्व. पूर्णचन्द्र नाहर के कोलकाता स्थित पुस्तक संग्रहालय और कला भवन से प्रेरणा लेकर उन्होंने अपने व्यापार और शोध कार्य आदि के प्रसंग में देशाटन-तीर्थाटन करते हुए बड़े यत्न, श्रम और लगन से यत्र-तत्र प्राप्त कर सहस्रों दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों और मुद्रित पुस्तकों का भण्डार अपने अग्रज की स्मृति में स्थापित 'अभय जैन ग्रन्थालय' में संजोया तथा लगभग तीन सहस्र दुष्प्राप्य चित्रों, सैकड़ों सिक्कों, हजारों प्राचीन मूर्तियों एवं अन्य कलाकृतियों का एक संग्रह अपने पिताजी के नाम पर बीकानेर में स्थापित 'श्री शंकरदान नाहटा कला भवन' में संरक्षित कर दिया।

लभ्य, अलभ्य और दुर्लभ पुस्तकों का एक अच्छा संग्रह रखने वाले विद्यानुरागी अगरचन्द जी नया-पुराना सब साहित्य, जो मिल जाता था, पढ़ते थे। और कहीं विचार वैभिन्य होने पर अपना मत प्रकट करने से चूकते नहीं थे। भाषा विज्ञान, इतिहास, आलोचना, धर्म-दर्शन, पुरातत्त्व-कला उनके प्रिय विषय थे। आध्यात्मिक और विचार-प्रधान साहित्य के साथ-साथ कहानी, उपन्यास, नाटक, यात्रा संस्मरण आदि भी

उनकी दृष्टि से अछूते नहीं रहते थे। पढ़ने के साथ-साथ वह लिखते भी खूब थे। जब चाहा बड़ा, छोटा, गंभीर, हल्का लेख लिख दिया। स्वयं उन्हीं के शब्दों में, "मैं साठ पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखता हूँ; क्योंकि सम्पादकों का विशेष आग्रह रहता है और मैं किसी का आग्रह टालने में बड़ा ही दुर्बल हूँ।" लगभग तीन सौ पत्र-पत्रिकाओं में तीन सहस्र से ऊपर उनके लेख प्रकाशित हुए और चालीस से ऊपर कृतियों के प्रणयन-सम्पादन आदि का उन्हें श्रेय रहा। उनमें से कई कृतियों का प्रणयन-सम्पादन उन्होंने लगभग अपने समवयस्क और समान विद्यानुरागी भ्रातृज श्री भंवरलाल नाहटा के साथ मिलकर किया। उनकी उल्लेखनीय कृतियां हैं- **विधवा कर्त्तव्य**, **युगप्रधान श्री जिनचन्दसूरि**, **ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह** (श्री भंवरलाल नाहटा के साथ मिलकर सम्पादित), **समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि**, (श्री भंवरलाल नाहटा के साथ मिलकर सम्पादित), **राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज**, **बीकानेर जैन लेख संग्रह** (नाहटाद्वय द्वारा प्रणीत), **बीकानेर के दर्शनीय जैन मंदिर**, **जसवंत उद्योत** (सम्पादित), **क्यामखांरासा** (नाहटाद्वय द्वारा सम्पादित), **युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि** (नाहटाद्वय द्वारा प्रणीत), **श्रीमद् देवचन्द्र स्तवनावली**, **बम्बई चिन्तामणि पार्श्वनाथादि स्तवन पद संग्रह**, (नाहटाद्वय द्वारा सम्पादित) **ज्ञानसार ग्रन्थावली**, (नाहटाद्वय द्वारा सम्पादित), **छिताई चरित** (श्री हरिहरनिवास द्विवेदी के साथ मिलकर सम्पादित), **परिदान लालस ग्रन्थावली** (सम्पादित), **जिनहर्ष ग्रन्थावली** (सम्पादित), **जिनराजसूरि- कृति- कुसुमांजलि** (सम्पादित), **धर्मवर्द्धनग्रन्थावली** (सम्पादित), **सीताराम चौपाइ** (नाहटाद्वय द्वारा सम्पादित), **प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा** (लेख संग्रह), **सभा श्रृंगार** (संकलन-सम्पादन), **पंच भावनादि सज्झाय सार्थ** (नाहटाद्वय द्वारा सम्पादित), **रत्न परीक्षा** (सम्पादित), **दादा श्री जिनकुशलसूरि** (नाहटाद्वय द्वारा प्रणीत), **भक्त-माल सटीक** (सम्पादित), **राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा** (व्याख्यान संग्रह), **मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि** (नाहटाद्वय द्वारा प्रणीत), **अष्टप्रवचनमाला सज्झायसार्थ** (सम्पादित), **ऐतिहासिक काव्य संग्रह** (सम्पादित), **शिक्षासागर** (सम्पादित), **बीवी बांदी का झगड़ा** (सम्पादित), **रुक्मणी मंगल** (सम्पादित), **मरु-गुर्जर जैन कवि और उनकी रचनाएं** (सम्पादित), **दम्पति विनोद** (सम्पादित), **प्राचीन गुर्जर काव्य संचय** (सम्पादित) और श्री जिनप्रभसूरि रचित **विविध तीर्थकल्प का अनुवाद** (नाहटाद्वय द्वारा) जिस पर पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जी ने विशद सारगर्भित प्रस्तावना लिखी थी।

नाहटा जी की कृतियों की इस नामावली से स्पष्ट है कि उनकी विषय-परिधि व्यापक रही और उन्हें अनेक अज्ञात रही कृतियों और उनके रचनाकारों को प्रकाश

में लाने का श्रेय रहा। उनके विद्याव्यसन का लाभ उठा अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने उन्हें अपना सम्पादक बनाया अथवा सम्पादन मण्डल में स्थान देकर गौरवान्वित किया। उनके सम्पादन से '**राजस्थानी**, '**राजस्थान भारती**, '**विश्वम्भरा**', '**परम्परा**', '**मरु-भारती**', '**वरदा**', '**अन्वेषणा**', '**वैचारिकी**' आदि पत्रिकाएं लाभान्वित हुईं। '**राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ**' को भी आपके सम्पादकत्व का गौरव प्राप्त रहा। चलते-फिरते विश्वकोश माने जाने वाले अगरचन्द नाहटा जी को सैकड़ों शोध-छात्रों का मार्गदर्शन करने, अनेक शोध-प्रबंधों का परीक्षक रहने और सहस्रों जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा शान्त करने का भी श्रेय रहा। और यह सब कार्य वह निस्संकोच स्वान्तः सुखाय भाव से अपनी पारिवारिक, व्यावसायिक, सामाजिक, धार्मिक व्यस्तताओं में से समय निकालकर निष्ठापूर्वक करते रहे। वह राजस्थानी साहित्य परिषद एवं शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर के निदेशक तथा नागरी प्रचारिणी सभा, आनन्दजी कल्याणजी जैन पेढ़ी, श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स और राजस्थानी साहित्य एकेडेमी के मानद सदस्य भी रहे।

उनकी इस अद्भुत कार्यक्षमता के पीछे प्रेरक तत्व रही बालपन में पढ़े इस दोहे में निहित सीख-

''काल करै सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगो कब्ब।''

और निश्चिन्तता का भाव प्राप्त हुआ **श्रीपालचरित्र** में निबद्ध इस पद्य से-

''रे मन ! अप्पहु खंच करि, चिंता जाल मप्पाडि।
फल तित्तउँ हिज पामिसइ, जित्तउ लिहउ लिलाड़ि।।''

(अर्थात् जितना भाग्य में लिखा है उतना फल मिलेगा इसलिय चिंता करना व्यर्थ है।) स्वयं नाहटा जी के कथनानुसार यह उनके जीवन का तीसरा सूत्र था जो उनके दैनिक जीवन में, गृहस्थ जीवन में एवं व्यापार व्यवसाय के जीवन में शक्ति का प्रबल स्रोत बन गया।

अगरचन्द नाहटा जी के विद्यावैभव से प्रभावित हो जैन सिद्धान्त भवन, आरा ने उन्हें '**सिद्धान्ताचार्य**', जिनदत्तसूरिसंघ ने '**जैन इतिहास रत्न**', दि इण्टरनेशनल अकादमी ऑफ जैन विजडम एण्ड कल्चर, आरा ने '**विद्यावारिधि**' और राजस्थान भाषा प्रचार सभा, जयपुर ने '**राजस्थानी साहित्य वाचस्पति**' की उपाधि से विभूषित किया था।

शेष पृष्ठ ७ पर

बड़नगर और उसका पुरातत्त्व

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

बड़ो या बड़नगर नामक स्थान मध्यप्रदेश में एरन से १३ मील दक्षिण पूर्व तथा विदिशा से ५० मील उत्तर पूर्व में स्थित पथारि नामक ग्राम से तीन मील दक्षिण की ओर ज्ञाननाथ नामक पहाड़ी की तलहटी में एक झील के किनारे बसा हुआ है। पूर्वकाल में बड़नगर एक बड़ा समृद्ध नगर था। इस नगर की स्थापना और समृद्धि का श्रेय भैंसासाह (या पाड़ासाह) नामक व्यक्ति को दिया जाता है। कहा जाता है कि प्रारम्भ में वह तेल का एक साधारण व्यापारी था और अपने कुछ भैंसों के ऊपर तेल के कुप्पे लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाकर व्यापार करता था। एक बार वह पारस टोला नामक स्थान में ठहरा था। वहाँ एक पुराना तालाब था, उसका एक भैंसा उस तालाब में नहाने के लिये घुस गया, जब वह बाहर निकला तो उसकी लोहे की जंजीर सोने की हो गई थी। भैंसासाह ने अनुमान किया कि अवश्य वहाँ पारस पथरी है। खोज करने पर वह पत्थर उसे मिल गया और फलस्वरूप वह व्यक्ति अत्यन्त धनाढ्य हो गया। उसने बड़नगर उसी स्थान पर बसाया। पथारि भी बड़नगर का ही एक भाग था। मध्यप्रदेश और बुन्देलखंड में भैंसासाह के संबंध में अनेक अनुश्रुतियां प्रचलित हैं। कहा जाता है कि वह जैन धर्मावलम्बी था और उसने अनेक स्थानों में सुन्दर जिन मंदिर निर्माण कराये थे।

बड़नगर में अनेक प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं, जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'गडरमर' या गड़रिये का मंदिर है। सन् १८५१ ई. में प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ जनरल कनिंघम ने इस मंदिर में एक विशालकाय स्त्री मूर्ति देखी थी। स्त्री एक शिशु के साथ शैय्या पर लेटी हुई थी। प्रारम्भ में कनिंघम ने अनुमान किया कि यह मायादेवी और बालक बुद्ध की मूर्ति होगी, फिर सोचा कि शायद यह देवकी और बालकृष्ण की मूर्ति हो, किंतु जब उसने मंदिर का और निकट से परीक्षण किया तो उसे कोई संदेह नहीं रहा कि यह एक जैन मन्दिर है और मूर्ति माता त्रिशला और बालमहावीर की है। लगभग २० वर्ष पश्चात् जब कनिंघम फिर से उक्त स्थान पर गया तो किसी ने उक्त मूर्ति को तोड़ डाला था और अब यह भी नहीं मालूम कि वह खंडित मूर्ति भी वहाँ है या नहीं। त्रिशला और शिशु महावीर की इस प्रकार की अन्य किसी मूर्ति के कहीं अन्यत्र होने का अभी तक पता नहीं चला है।

कनिंघम का यह भी अनुमान था कि इस जैन मंदिर के निर्माण में कुछ प्राचीन तथा ध्वस्त जैन एवं हिन्दू मंदिरों की सामग्री का भी उपयोग किया गया है, कम से कम उसके ऊपरी हिस्सों में। मंदिर की सामने की दीवार के बाहरी भाग में आधी ऊँचाई पर अनेक दिगम्बर जैन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मंदिर का सर्वाधिक कलापूर्ण अंग उसका अत्यन्त अलंकृत तोरणद्वार है। इस मंदिर के निकट ही ६-७ छोटे-छोटे मंदिर गणेश, नवगृह, अष्ट मातृका आदि के हैं। गडरमर मंदिर के पश्चिम की ओर छोटे-छोटे जैन मंदिरों का एक अन्य समूह है जिसके मध्य में स्तंभों पर आधारित एक खुला सभामण्डप है और उसके चारों ओर छोटे-छोटे वेदी गृह हैं जिनमें तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं। इस वर्गाकार मंदिर समूह के बाहर एक पाषाणखंड पर एक शिलालेख अंकित पाया गया जिसमें वैसाख शुक्ल १४ संवत् ६३३ की तिथि और किसी यादव वंशी नरेश के राज्यकाल का संकेत है। इस प्रकार बड़नगर और उसके जैन मंदिरों की प्राचीनता कम से कम ६वीं शताब्दी ईस्वी तक तो पहुँचती ही है।

प्रस्तुत विवरण जनरल कनिंघम की आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया रिपोर्ट, भाग १० (सन् १८८०) के पृ. ७१-७६ के आधार पर लिखा गया है। वर्तमान में उक्त अवशेषों में से कितने और किस दशा में हैं, यह नहीं कहा जा सकता।

{**जैन संदेश शोधांक** १४ (२ अगस्त, **१९९२**) से साभार उद्धृत -रमा कान्त जैन}

शेष पृष्ठ ५ का..

अन्य सामान्य प्राणियों की भांति अगरचन्द नाहटा को भी जीवन में अनेक सुख-दुख भोगने पड़े, खट्टे-मीठे फल चखने को मिले, किन्तु उन्होंने उन्हें समत्व भाव से स्वीकारा। घर में लाखों की चोरी हो गई, अर्द्धांगिनी का विछोह हो गया और पुत्र धर्मचन्द की २५ वर्षीया सुशील वधु कुछ ही घंटों में देखते-देखते अकाल काल कवलित हो गई, किन्तु नाहटा जी दुख के उस कालकूट को प्रकृतिस्थ रह ऐसे पी गये मानो ज्ञानजल से मोहपंक को धो रहे हो।

लक्ष्मी और सरस्वती की भरपूर कृपा प्राप्त, बहुमुखी प्रतिभा के धनी अगरचन्द नाहटा जी की इस वर्ष ९४वीं जन्म जयन्ती तथा २२वीं पुण्यतिथि पर अगर की तरह सुगंधित तथा चन्द्र से शुभ्र उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का पुण्यस्मरण करते हुए उन्हें शतशः नमन् है।

- रमा कान्त जैन

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

सम्पादकीय

समाधिमरण

मेरी दीर्घकालीन गम्भीर अस्वस्थता का समाचार पाकर मेरे अनेक स्नेही इष्टमित्रों ने चिन्ता व्यक्त की है और मेरे शीघ्र ही स्वास्थ्यलाभ करने की कामना की है। मेरे कुछ शुभचिन्तकों ने मेरी वय और निरन्तर बनी हुई अस्वस्थता को दृष्टि में रख तथा कदाचित् मृत्यु को आसन्न मान मुझे **'समाधि दीपक'** की कथाएं और दोनों **'समाधिमरण पाठ'** नित्य प्रति पढ़ने की सलाह भी दे डाली है। मैं इन सभी स्नेहीजनों और शुभचिन्तकों का हृदय से आभारी हूँ।

अपने प्रिय स्तोत्रों आदि का प्रायः नित्यप्रति पाठ करते हुए जब-तब कई बार कवि द्यानतराय (ईस्वी सन् १६७६-१७२६) कृत **'समाधिमरण पाठ'** (दस पद) और पं. सूरचन्द द्वारा विक्रम संवत् १९५५ (१८९८ ई.) की आश्विन् कृष्ण सप्तमी को रचित **'समाधिमरण पाठ'** (बड़ा पाठ-५५ पद) को भी पढ़ा है। आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी द्वारा संकलित-सम्पादित **'समाधि दीपक'** पुस्तिका और उसमें संगृहीत उपसर्ग सहकर प्राण तजने वाले मुनिराजों की कथाएं भी मेरे दृष्टिपथ में आईं। अभी कुछ समय पूर्व बन्धुवर डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा ने मृत्यु महोत्सव को समर्पित **'दिशाबोध'** का अंक निकाला था। वह भी देखने में आया था। जैन पत्र-पत्रिकाओं में आये दिन सल्लेखना लेने, समाधिमरण करने के समाचार और समाधिमरण को महिमामंडित करने वाले लेख आदि भी पढ़ने को मिलते रहे हैं।

वर्षों से हृदयरोग, मधुमेह, दृष्टिमंदता एवं श्रवणमंदता से ग्रसित जर्जर काया लिये ८७ वर्ष पूर्ण कर जीवन-यात्रा के कगार पर खड़ा हूँ। पाँच हार्ट अटैक झेले हैं। कई बार ऐसा लगा मृत्यु स्पर्श कर पास से निकल गई। और अब तो शनैः शनैः स्मरण-शक्ति भी जबाब देने लगी है। इन्द्रियाँ शिथिल हो चुकी हैं। यह अच्छी तरह जानता-समझता हूँ कि जो भी जीव इस धरा पर जन्मा है उसकी एक न एक दिन मृत्यु अवश्यम्भावी है। मेरे बूढ़े कन्धों पर कोई विशेष जिम्मेदारी भी नहीं है। कोई अतृप्त इच्छा नहीं है। पर्याप्त यश-धन मर्यादित ढंग से पाया है। किन्तु जब तक आत्मपखेरू स्वयं ही देहतत्व से मुक्त नहीं हो जाता उसे अपनी ओर से अलग नहीं करना चाहता। मैं तो संतोषपूर्वक अपने यत्किंचित् कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए अपनी जीवन-डगर पर बढ़े चला जा रहा हूँ, भले ही सम्यक्त्वी प्राणियों की दृष्टि से समाधिमरण की पात्रता मैंने अर्जित कर ली हो और निर्धारित विधि से सल्लेखना न लेकर कोई पाप कर रहा हूँ।

समाधिमरण, सल्लेखना के औचित्य पर मैंने गम्भीरतापूर्वक चिन्तन-मनन किया। यह आत्महत्या, Sucide और इच्छा मृत्यु का पर्यायवाची लगा। अकाल (समय से पूर्व) मृत्यु भी इसमें भासित हुई। प्रायः जब कोई व्यक्ति शारीरिक, मानसिक या किसी अन्य कष्ट के कारण अपने जीवन से पूर्णतया ऊब जाता है तो वह अपने शरीरान्त का उपक्रम करता है जो कानून की दृष्टि में अपराध है क्योंकि किसी को भी अपना जीवन भी समय से पूर्व समाप्त करने का अधिकार नहीं है।

असाध्य रोग या अवस्था से जर्जरित देह लिये असीम कष्ट भोग रहे प्राणियों को पीड़ा मुक्त कराने के सद्उद्देश्य से कुछ मानवतावादी संगठन Euthansia या Mercy death की अनुमति प्रदान किये जाने की वकालत कुछ समय से करते आ रहे हैं। किन्तु इस सहुलियत का कितना सही उपयोग होगा और कितना निहितस्वार्थी व्यक्तियों द्वारा दुरुपयोग, इसका निर्णय कठिन है। इसीलिये कानून उसकी अनुमति देने से कतराता रहा है।

गृहत्यागी मुनिराज, आर्यिका आदि जो पूर्णतया वीतराग होते हैं उन्हें असाध्य रोग या अवस्था के कारण जर्जरित देह में असीम कष्ट होने पर मृत्यु आसन्न जान समाधिमरण लेने या लिवाने की परम्परा है, और उसे धर्ममरण या मृत्यु महोत्सव की संज्ञा दी जाती है। किन्तु वह भी कितनी उचित है, विचारणीय है। स्वेच्छापूर्वक है, तो ठीक है और यदि थोपी गई है, तो उसका औचित्य क्या हैं ? गत शताब्दी में एक महाराजश्री ने, जो अपने को निमित्तज्ञानी मानते थे, एक अन्य महाराजश्री को यह बताकर कि उनका जीवन अब कुल इतने दिन शेष बचा है समाधिमरण दिलवा दिया। अवधि बीत गई, पर काल-घंटी नहीं बजी और वह क्षुधा-तृषा से त्रस्त हो उठे। समाधिमरण आर्तमरण में परिवर्तित होने लगा। जब उनके आचार्यश्री को यह विदित हुआ तो उन्होंने तथाकथित निमित्तज्ञानी जी को फटकारा और क्षुब्ध मुनिराज का समाधिमरण भंग कराया।

जहाँ तक गृहस्थों को समाधिमरण करने या दिलाने की बात है, कवि द्यानतराय ने तो सात व्यसनों से मुक्त, बाइस अभक्षों के त्यागी, संयमी, बारह व्रतों का पालन करने वाले, आरम्भी हिंसा भी न करने वाले, व्यापार में पराया धन न हड़पने वाले, देव-शास्त्र-गुरु की पूजा करने वाले, सेवाव्रती, परोपकारी, चार प्रकार का दान देने वाले, अल्प आहारी और सामायिक विधि जानने वाले श्रावक को समाधिमरण करने का पात्र माना है। इतनी अर्हताएं रखने वाले और इस कसौटी पर खरे उतरने वाले कितने गृहस्थ हैं, इनकी गणना करना कठिन है। और समाधिमरण की जो प्रक्रिया (विधि-विधान) गृहस्थ के लिये बताई गई है उसे शनैः शनैः भी पालन करना कितनों के लिये साध्य है, कहना कठिन हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि मृत्यु अवश्यम्भावी है, पर कितने हैं जो मृत्यु आने से पहले मर जाना चाहते हैं ? जहाँ तक परिग्रह त्याग का सम्बन्ध है या आहार की मात्रा को शनैः शनैः कम करते जाने की बात है, वे तो, अपवादों को छोड़कर, सामान्य आसन्न मृत्यु की स्थिति में स्वतः कम होते चले जाते हैं। रोगों से जर्जरित वृद्धकाया को कुछ वस्तुएं खाने-पीने पर जहाँ एक ओर डक्टर या तीमारदारों द्वारा रोक लगा दी जाती है तो दूसरी ओर स्वयं वृद्ध रोगी की भी इच्छा, भूख-प्यास मर जाती है। वस्त्राभूषण पहनने आदि का शौक भी छूटता चला जाता है। अतः समाधिमरण की यह प्रक्रिया तो स्वतः सम्पन्न हो जाती है। यद्यपि लोभ और मोह, राग और द्वेष पूर्णतः तो नहीं छूट पाते, किन्तु जीवन और दुनिया के अनुभवों से परिपक्व वृद्ध व्यक्ति जीवन के इस अन्तिम पड़ाव पर काफी कुछ इनसे अपने को मुक्त कर लेता है। रही अन्त समय धर्म ध्यान में मन लगाने की बात, स्व अनुभव के आधार पर आपसे पूछना चाहूँगा कि जब शारीरिक या मानसिक वेदना से ग्रसित हो आपके मुख से 'हाय, हाय' निकल रही हो, तब प्रभु नाम कैसे उच्चरित होगा, भले ही सारी जिन्दगी आप धर्मनिष्ठ रहे हों ?

यह कहना कि स्वात्मोपलब्धि हो जाने पर, केवलज्ञान हो जाने पर मुक्ति मिल जाती है, हमारी समझ में तो केवल वैचारिक अवधारणा है, तर्कसंगत निष्कर्ष नहीं। हमें तो यही उचित प्रतीत होता है कि रोग-शोक का आवश्यक उपचार करते हुए सहज ढंग से मृत्यु का वरण किया जाय।

सामान्य गृहस्थ के मरण को भी सरल और धर्मनिष्ठ बनाने के उद्देश्य से रचे गये समाधिमरण पाठों और तत्सम्बन्धी अन्य साहित्य के प्रणेता मनीषियों की सदाशयता निस्संदिग्ध है। किन्तु यह विचारणीय है कि वे कितने व्यावहारिक हैं। धार्मिक आस्था अपनी जगह है और व्यावहारिकता अपनी जगह। इस प्रकार के साहित्य की रचना जिन्होंने जिस समय की वे उस समय आसन्न मृत्यु से कोसों दूर रहे, अतः व्यावहारिक बात न कह सके। यदि उनकी मृत्यु आसन्न होती तो वे इनकी रचना ही न कर पाते। उन्होंने धार्मिक निष्ठा के वशीभूत हो उपदेश दिया है और हमारा भी किंचित् भी आशय उनकी अवमानना का नहीं है और ना ही समाधिमरण को विधि-विधान सहित अंगीकार करने के लिये स्वेच्छा से समुत्सुक किसी भी धर्मात्मा को निरुत्साहित करने का। हमने तो जैसा स्वयं अनुभव किया, लिख दिया। इत्यलम्।

दिनांक : १५.१.२००५ **– अजित प्रसाद जैन**

जैन संस्कृति में कौशाम्बी

- डॉ. शशि कान्त

उत्तर प्रदेश के कौशाम्बी जिले में यमुना नदी के उत्तरी तट पर इलाहाबाद से लगभग ३२ मील दक्षिण-पश्चिम को तहसील मंझनपुर के परगना करारी में कोसम इनाम और कोसम खिराज नाम के गाँव देशान्तर ८१° २२'-२४' और अक्षांश २५° २०'-२१' पर स्थित हैं। इन्हीं से कौशाम्बी को चीन्हा गया है।

जैन परम्परा में कौशाम्बी की प्रतिष्ठा तीर्थंकर के जन्म से पवित्र हुए महातीर्थ के रूप में है। **(सा कोसंबी नगरी जिणजन्म पवित्तिऊ महातित्थं - जिनप्रभ सूरि)**। जैनों के छठे तीर्थंकर पद्मप्रभु का जन्म इसी नगरी में हुआ था।

जैनधर्म अहिंसा-प्रधान श्रमण विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है और इसकी परम्परा प्रायः उतनी ही प्राचीन है जितनी कि वैदिक धर्म की। जैनधर्म के प्रतिपादक २४ तीर्थंकर माने जाते हैं। इनमें सर्वप्रथम ऋषभदेव थे। इनका उल्लेख **ऋग्वेद** और **यजुर्वेद** में मिलता है। छठे तीर्थंकर पद्मप्रभु का समय पूर्व-वैदिककाल में सूचित किया जा सकता है। वह कौशाम्बी के इक्ष्वाकुवंशी और काश्यपगोत्री राजा धरण और रानी सुसीमा के पुत्र थे।

उत्तरपुराण के लेखक आचार्य गुणभद्र के अनुसार २१वें तीर्थंकर नमिनाथ के तीर्थ में जैन परम्परा के ११वें चक्रवर्ती जयसेन का जन्म भी कौशाम्बी में हुआ था। वह कौशाम्बी के इक्ष्वाकुवंशी राजा विजय और रानी प्रभाकरी का पुत्र था।

ई.पू. ८वीं शती में २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने भी कौशाम्बी में विहार किया था। वह काशी के निवासी थे।

२४वें तीर्थंकर निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र वर्द्धमान महावीर का भी कौशाम्बी से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। महावीर, गौतम बुद्ध के समकालीन थे। उनका जन्म ५९९ वर्ष ई.पू. में वैशाली में हुआ था और उनकी मृत्यु ५२७ ई. पू. में पावा में हुई थी। ५५७ ई. पू. में अपनी तपस्या के १२वें वर्ष में चार माह के उपवास के बाद उन्हें कौशाम्बी में अंग के राजा दधिवाहन की पुत्री वसुमति, अपरनाम चन्दना, के हाथ से आहार मिला था। इस घटना का जैन पौराणिक साहित्य में विशेष महत्व है। चन्दना आगे चलकर महावीर के साध्वी संघ की प्रधान बनी। उसके बाद भी उन्होंने कौशाम्बी में समय-समय पर विहार किया था। ऐसे ही एक अवसर पर उज्जैन का राजा प्रद्योत भी वहाँ उपस्थित था और उसकी अनुमति से उसकी पत्नी अंगारवती और उदयन

की माता मृगावती महावीर के साध्वी संघ में दीक्षित हो गई थीं। ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि उदयन पर उनका कोई विशेष प्रभाव था। उनके एक प्रमुख शिष्य गणधर मेतार्य का जन्म कौशाम्बी के तुंगिय संनिवेश में हुआ था।

महावीर के अनन्तर कौशाम्बी जैनधर्म का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बनी रही। जैन आचार्य सुहस्ति और महागिरि ने कौशाम्बी में ३री शती ई.पू. में विहार किया था; उस समय वहाँ दुर्भिक्ष पड़ रहा था। मौर्य सम्राट सम्प्रति को उन्होंने ही जैनधर्म में अनुरक्त किया था। जैन परम्परा में सम्प्रति का वही स्थान है जो उसके पितामह अशोक का बौद्ध परम्परा में है।

कौशाम्बी प्रदेश में जैन श्रमणों के विहार के लिए विशेष सुविधा रही प्रतीत होती है। कुछ ग्रन्थों में दक्षिण दिशा में जैन साधुओं के विहार के लिए कौशाम्बी की सीमा भी निर्धारित मिलती है। यह भी विहार के लिए कौशाम्बी की उपयुक्तता ही सूचित करती है। जैन साधुओं के उत्तर बलिस्सह गण की एक शाखा भी 'कोसंबिया' (अर्थात् कौशाम्बी की) के नाम से विख्यात थी।

कौशाम्बी के खंडहरों में भी पर्याप्त जैन अवशेष मिले हैं। पहली शती ई. के पूर्वार्ध में स्थापित लाल बलुए पत्थर का एक आयागपट्ट कौशाम्बी से मिला है। लगभग इसी काल के बहुत से जैन आयागपट्ट मथुरा से भी मिले हैं। इनकी शैली एक ही है। इनसे यह भासता है कि उस काल में मथुरा और कौशाम्बी के जैन केन्द्रों में विशेष सम्पर्क था।

ऐस अनुमान किया जाता है कि तीर्थंकर की मूर्ति के विकास से पहले इन आयागपट्टों को ही पूजा के हेतु मंदिरों में स्थापित किया जाता था। सर्वप्राचीन पट्टों में कुछ पवित्र चिन्ह ही उत्कीर्ण मिलते हैं। फिर तीर्थंकर की प्रतिकृति भी इन पर उकेरी जाने लगी। अधिकांश आयागपट्ट ईस्वी सन् की प्रथम दो शताब्दियों के हैं।

दूसरी शती ई. में भद्रमघ के राज्यकाल में शपर और मांगनी ने कौशाम्बी में किसी जैन मन्दिर के लिए तोरण का निर्माण भी कराया प्रतीत होता है। शक सम्वत् ८६ (१६४ ई.) के एक शिलालेख से, डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार, ऐसा भासता है। शक सम्वत् ८७ (१६५ ई.) के भी दो शिलापट्ट मिले हैं। उन पर उत्कीर्ण लेखों से यह ज्ञात होता है कि किसी पुष्करिणी के तट पर इन पट्टों की किन्हीं जैन आचार्य के लिए आसनों के रूप में स्थापना की गई थी। ये आचार्य मथुरा के कोट्टियगण की वेरा (वज्रा) शाखा के वाचक आर्य हस्तहस्ति के शिष्य गणी आर्य नागहस्ति के श्रद्धाचारी वाचक आर्य आर्यदेव रहे प्रतीत होते हैं।[१] इनका उल्लेख

मथुरा से प्राप्त कितने ही जैन शिलालेखों में मिलता है। मथुरा में सर्वप्रथम जैन सरस्वती की मूर्ति की स्थापना भी इन्होंने ही कराई थी और जैन शास्त्रों को लिपिबद्ध किये जाने के लिए आन्दोलन के यह नेता थे। जैन साहित्यिक कार्यकलापों का भी कौशाम्बी एक केन्द्र रही प्रतीत होती है। साहित्यिक कार्य में सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से ही इन आसनों की स्थापना की गई लगती है। इन आसनों की स्थापना शपर और मांगनी के पुत्र शनिक और षण्ढक ने धर्म और पुण्य की वृद्धि के लिए की थी। शपर कौशाम्बी का पत्तनकर (नगर-नियोजक) था।

ध्वंसावशेषों में देवड़ा टीले पर नये मन्दिर से लगभग ५० गज की दूरी पर ११ वीं शती ई. की बहुत सी जैन मूर्तियां मिली हैं [२], जो यह सूचित करती हैं कि उस समय वहां कोई जैन मन्दिर स्थित था। यह सम्भवतः १४वीं शती के पूर्वार्द्ध में जिनप्रभू सूरि की यात्रा के समय विद्यमान था। इस मन्दिर की धुंधली स्मृति बाद तक भी बनी रही और उसी के आधार पर १८३४ ई. में इस टीले पर एक नया जैन मन्दिर बना दिया गया जो अभी मौजूद है। नये मंदिर में मूलनायक मूर्ति २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की है।

जिनप्रभू सूरि ने नगरी के समीप वसुहार ग्राम में एक अन्य प्रसिद्ध मन्दिर का भी उल्लेख किया है। इसके अवशेष अभी प्रकाश में नहीं आये हैं।

बहुत से फुटकर अवशेष भी मिले हैं जिनमें कुषाण और गुप्तकाल की तीर्थंकर मूर्तियां, मूर्तियों के सिर और तीर्थंकरों की प्रतिकृति से अलंकृत शिलापट्ट सम्मिलित हैं। यह संभव है कि इनमें से कुछ मूर्तियाँ हुएन-सांग द्वारा उल्लिखित ५० देव-मन्दिरों में से कुछ में ७वीं शती ई. में प्रतिष्ठित रही हों।

कौशाम्बीनगर के बाहर स्थित पभोसा की पहाड़ी (प्रभास पर्वत) को भी जैन लोग तीर्थ के रूप में देखते रहे हैं। १८२४ ई. में प्रयाग निवासी श्री हीरालाल गोयल ने यहाँ एक मन्दिर बनवाया था जो अभी विद्यमान है। इस मन्दिर के साथ एक धर्मशाला भी सम्बद्ध है।

– ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

---

१. एक लेख में 'भगवतु अयूययदव आसनपट्टा स्थापित" पाठ है। "अयूययदव" 'आर्य आर्यदेव' का अपभ्रष्ट रूप प्रतीत होता है। देखें, डॉ. ज्योति प्रसाद जैन – 'कोसम से प्राप्त दो शिलालेख' (**जैन संदेश शोधांक**-३, पृ. १२२-२४)

२. देखें, डॉ. ए. फुहरर कृत '**दि मानुमेन्टल एन्टीक्वीटीज एण्ड इन्सक्रिप्शन्स इन दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एंड अवध**', पृष्ठ १४१।

महावीर जयन्ती पर विशेष

मेरे प्यारे महावीर

मेरे प्यारे महावीर, जग के तारक महावीर।
तेरे चरणों मं वंदन, शत-शत बार महावीर।।

कुण्डनगर के तुम हो प्यारे, सिद्धारथ के राजदुलारे।
भारत भूमि के सितारे, त्रिशला नंदन महावीर।मेरे...।।१।।

संयम पथ को था अपनाया, कष्टों को गले लगाया।
संगम देव के विजेता, धीर-वीर महावीर।मेरे....।।२।।

पशुओं पर करुणा आई, यज्ञों से बलि मिटायी।
अहिंसा धर्म के उपदेशक, युगवीर महावीर।मेरे...।।३।।

दलितों को गले लगाया, हरिकेशी को मुनि बनाया।।
ऊँच-नीच को मिटाया, दीनबन्धु महावीर।। मेरे....।।४।।

चण्डकौशिक सा विषधर तारा, तूने तारी चन्दन बाला।
अर्जुन माली के उद्धारक, करुणा सागर महावीर।मेरे...।।५।।

महावीर शिक्षा जीवन में लाएं, दुखियों का दर्द मिटाएं।
न्योछावर जीवन ये कर दें, तेरे कदमों पर महावीर।मेरे...।।६।।
जनम दिन आज शुभ आया, जन-मन में हर्ष है छाया।
"नाहर" गीतांजलि अर्पित है, युगवंद्य महावीर।मेरे....।।७।।

- श्री लूणकरण नाहर जैन
'नाहर निकेतन', ५१४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

सूचना

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी द्वारा 'पत्राचार प्राकृत सार्टिफिकेट पाठ्यक्रम' का आगामी सत्र १ जुलाई २००५ से प्रारम्भ होगा। इसमें प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी एवं अन्य भाषाओं/विषयों के प्राध्यापक, अपभ्रंश-प्राकृत शोधार्थी एवं संस्थानों में कार्यरत विद्वान सम्मिलित हो सकेंगे। नियमावली एवं आवेदन पत्र **दिनांक २५ मार्च से १५ अप्रैल, २००५ तक** अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-३०२००४ से मिलेंगे। कार्यालय में आवेदन पत्र पहुँचने की **अन्तिम तारीख १५ मई, २००५ है।**

भगवान महावीर का जन्म स्थल : एक पुनर्विचार

- डॉ. सागरमल जैन

[प्रस्तुत लेख में जैन वाङ्मय के प्रख्यात गहन अध्येता विद्वान लेखक ने सम्प्रदाय निरपेक्ष दृष्टि से भगवान महावीर की जन्मस्थली कुण्डगामपुर (दिगम्बर आम्नाय मान्यतानुसार प्राचीनतम नाम) के विषय में विभिन्न मान्यताओं की विवेचना की है। - प्रधान सम्पादक]

जैन धर्म में चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर को एक ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में निर्विवाद रूप से मान्यता प्राप्त हो चुकी है। फिर भी दुर्भाग्य का विषय यह है कि उनके जन्मस्थान और निर्वाणस्थल को लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार की मान्यताएं प्रचलित हैं। मात्र यही नहीं, इन मान्यताओं के पोषण के निमित्त भी परम्पराओं के घेरे में आबद्ध होकर येन-केन-प्रकारेण अपने पक्षों को सिद्ध करने के लिये प्रयत्न और पुरुषार्थ भी किया जा रहा हैं। विगत ५० वर्षों में इन सब समस्याओं को लेकर विभिन्न पुस्तिकाएं और लेख आदि भी लिखे गये हैं। यह कैसा दुर्भाग्य है कि जैन समाज आज तक इस संबंध में मतैक्य नहीं बना सका। भगवान महावीर के जन्म स्थल को लेकर वर्तमान में तीन मान्यताएं प्रचलित हैं-

(१) अधिकांश विद्वत्जन एवं इतिहासवेत्ता तथा केन्द्रशासन वैशाली के निकट कुण्डग्राम को उनका जन्म स्थान मानते हैं।

(२) दिगम्बर परम्परा में कुछ लोग राजगृह और नालन्दा के निकटवर्ती बड़गांव या तथाकथित कुण्डलपुर को महावीर का जन्मस्थल मानते हैं।

(३) श्वेताम्बर परम्परा बिहार में जमुही के निकट लछवाड़ को महावीर का जन्म स्थान मान रही है।

दुर्भाग्य यह है कि इस संबंध में ऐतिहासिक और सम्प्रदाय निरपेक्ष दृष्टि से विचार करने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया गया। यद्यपि इस संबंध में विद्वत् वर्ग एवं इतिहासविदों ने कुछ लेख आदि लिखे भी हैं, किन्तु पारम्परिक आग्रहों के चलते उनकी आवाज सुनी नहीं गई।

श्वेताम्बर और दिगम्बर पक्षों की ओर से महावीर के जन्म स्थल को लेकर कुछ लेख एवं पुस्तिकाओं का प्रकाशन भी हुआ है और उनमें अपने-अपने पक्षों के समर्थन

में कुछ प्रमाण भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं वे सभी परवर्तीकालीन ही हैं। भगवान महावीर के संबंध में जो प्राचीनतम प्रमाण उपलब्ध हैं उनमें **आचारांग प्रथम श्रुतस्कन्ध** लगभग (ई.पू. ५वीं शताब्दी), **आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध** लगभग (ई.पू. प्रथम-द्वितीय शताब्दी), **सूत्रकृतांग** (ई.पू. दूसरी-तीसरी शताब्दी), **कल्पसूत्र** (ई.पू. लगभग दूसरी शताब्दी) हैं। **कल्पसूत्र** में महावीर के विशेषणों की चर्चा उपलब्ध है। उसमें उन्हें नाए, नायपुत्ते, नायकुलचंदे, विदेहे, विदेहदिन्ने अर्थात् विदेहदिन्ना का पुत्र, विदेहजच्चे (जात्य), विदेह सूमाले (कुमार) आदि विशेषणों से संबोधित किया गया है। ये सब विशेषण **आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध** के पन्द्रहवें अध्याय में भी उपलब्ध हैं। इन विशेषणों में भी विदेहजात्य विशेषण अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह स्पष्ट रूप से इस तथ्य को स्थापित करता है कि महावीर का जन्म विदेह क्षेत्र में ही हुआ था, जबकि वर्तमान में मान्य नालंदा के समीप वाला कुण्डलपुर तथा लछवाड़ दोनों ही मगध क्षेत्र में आते हैं। वे किसी भी स्थिति में विदेह के अन्तर्गत नहीं माने जा सकते। अतः महावीर का जन्म स्थान यदि किसी क्षेत्र में खोजा जा सकता है तो वह विदेह का ही भाग होगा, मगध का नहीं हो सकता।

कल्पसूत्र में यह भी कहा गया है कि 'तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु' अर्थात् ३० व्रर्ष विदेह क्षेत्र में व्यतीत करने के पश्चात् माता-पिता के स्वर्गगमन के बाद गुरु एवं वरिष्ठजनों की अनुज्ञा प्राप्त करके उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की।

श्री सीताराम राय ने महावीर के जन्म स्थान को लछवाड़ सिद्ध करने के लिये और वहीं से दीक्षित होकर कुछ ग्रामों में अपनी विहार यात्रा करने का संकेत देते हुए उन ग्रामों के नामों की समरूपता को **चूर्णि** के आधार पर सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया। किन्तु उनके इस प्रयत्न की अपेक्षा जिन विद्वानों ने उनका जन्म स्थान वैशाली के निकट कुण्डग्राम बताया है और **आवश्यकचूर्णि** के माध्यम से उनके दीक्षित होने के पश्चात् ही विहार यात्रा के ग्रामों का समीकरण **कोल्लागसन्निवेश** (वर्तमान कोल्हुआ) आदि से किया है वह अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। कोल्लाग को सन्निवेश कहने का तात्पर्य यही है कि वह किसी बड़े नगर का उपनगर (कॉलोनी) था और यह बात वर्तमान में वैशाली के निकट उसकी अवस्थिति से बहुत स्पष्ट हो जाती है। **कल्पसूत्र** में उनके दीक्षा स्थल का उल्लेख करते हुए स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि उन्होंने 'णाय खण्डवन' में अशोक वृक्ष के नीचे दीक्षा स्वीकार की। इससे यह भी सिद्ध होता है कि 'णाय खण्डवन' णायवंशीय क्षत्रियों के अधिकार का वन क्षेत्र

था और नाथवंशीय क्षत्रिय जिनका कुल लिच्छवी था, वैशाली के समीप ही निवास करते थे। आज भी उस क्षेत्र में जथेरिया क्षत्रियों का निवास देखा जाता है। जथेरिया शब्द मूलतः नाय या ज्ञातृ का ही अपभ्रंश रूप है। वैशाली से जो एक मुहर प्राप्त हुई है उसमें स्पष्ट रूप से वैशालीकुण्ड ऐसा उल्लेख है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि क्षत्रिय कुण्ड, ब्राह्मण कुण्ड, कोल्लाग आदि वैशाली के ही उपनगर थे। वैशाली गणतंत्र था और इन उपनगरों के नगर प्रमुख भी राजा ही कहे जाते होंगे। अतः भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ को राजा मानने में कोई आपत्ति नहीं आती। पुनः **कल्पसूत्र** में उन्हें राजा न कहकर मात्र क्षत्रिय कहा गया है। भगवान महावीर का जन्म स्थान वैशाली का निकटवर्ती कुण्डग्राम ही हो सकता है, इसका एक प्रमाण यह भी है कि भगवान महावीर को **सूत्रकृतांग** जैसे प्राचीन आगम में (१/२/३/२२) 'णायपुत्ते' के साथ-साथ (वैशालिक) 'वेसालिए' भी कहा गया है। उनके वैशालिक कहे जाने की सार्थकता तभी हो सकती है जबकि उनका जन्म स्थल वैशाली के निकट रहा हो।

कुछ लोगों का यह तर्क है कि उनके मामा अथवा नाना चेटक वैशाली के अधिपति थे अथवा माता वैशालिक थी इसलिये उन्हें वैशालिक कहा गया । किन्तु यह तर्क समुचित नहीं है, क्योंकि मामा या नाना के गांव के निवास स्थान के आधार पर किसी व्यक्ति को तद् नाम से पुकारे जाने की परम्परा नहीं रही है। उन्होंने तीस वर्ष तक 'विदेह' में निवास करने के पश्चात् दीक्षा ग्रहण की थी इस आधार पर यह बात पूर्णतः निरस्त हो जाती है कि उन्हें अपने ननिहाल के कारण वैशालिक कहा जाता था।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया जाता है कि महावीर के पिता राजा थे। किन्तु प्रश्न यह है कि वे किस प्रकार के राजा थे-स्वतंत्र राजा थे या गणतंत्र के राजा थे। राजगृह का मगध राजवंश साम्राज्यवादी था, जबकि वैशाली की परम्परा गणतंत्रात्मक थी। गणतंत्र में तो समीपवर्ती क्षेत्रों में छोटे-छोटे गांवों में स्वायत्त शासन व्यवस्था संभव थी, परन्तु साम्राज्यवादी राजतंत्रों में यह संभावना नहीं हो सकती। अतः हम नालंदा के समीपवर्ती कुण्डलपुर को अथवा लछवाड़ को महावीर का जन्मस्थान एवं पितृगृह स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि मगध का साम्राज्य इतना बड़ा था कि उसके निकटवर्ती नालंदा या लछवाड़ में स्वतंत्र राजवंश संभव नहीं। वैशाली गणतंत्र में उसकी महासभा में ७७०७ गणराजा थे। यह उल्लेख **त्रिपिटक** साहित्य में मिलता है। अतः महावीर के पिता सिद्धार्थ को गणराजा मानने में कोई आपत्ति नहीं आती। क्षत्रियकुण्ड के वैशाली के समीप होने से या उसका अंगीभूत होने से महावीर को वैशालिक कहा

जाना तो संभव होता है। यदि महावीर का जन्म नालंदा के समीप तथाकथित कुण्डलपुर में हुआ होता तो उन्हें या तो नालंदीय या राजगृहिक ऐसा विशेषण मिलता, वैशालिक नहीं। जहां तक साहित्यिक प्रमाणों का प्रश्न है, गणिनी ज्ञानमती माताजी एवं प्रज्ञाश्रमणी चंदनामतीजी ने नालंदा के समीपवर्ती तथाकथित कुण्डलपुर को महावीर की जन्मभूमि सिद्ध करने के लिये पुराणों और दिगम्बर मान्य आगम ग्रन्थों से कुछ सन्दर्भ दिये हैं। श्री राजमल जैन ने इसके प्रतिपक्ष में **महावीर की जन्मभूमि कुण्डपुर** नामक पुस्तिका लिखी जिसमें उन प्रमाणों की समीक्षा भी की है। एक बात बहुत स्पष्ट रूप से समझ लेना आवश्यक है कि दिगम्बर परम्परा के आगम तुल्य ग्रन्थ **कषायपाहुड़, षट्खण्डागम** आदि के जो प्रमाण इन विद्वानों ने दिये हैं, उन्हें यह ज्ञात होना चाहिये कि इन दोनों ग्रन्थों के मूल में कहीं भी महावीर के जन्मस्थान आदि के सन्दर्भ में कोई उल्लेख नहीं है। जो समस्त उल्लेख प्रस्तुत किये जा रहे हैं वे उनकी **जयधवला** और **धवला** टीकाओं से हैं जो लगभग ८वीं-१०वीं शताब्दी की रचनाएं हैं। इसी प्रकार जिन पुराणों से सन्दर्भ प्रस्तुत किये जा रहे हैं वे लगभग ९वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी के मध्य रचित हैं। अतः ये सभी प्रमाण **चूर्णि** साहित्य से भी परवर्ती ही सिद्ध होते हैं। अतः उन्हें ठोस प्रमाणों के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। वे केवल सहायक प्रमाण ही कहे जा सकते हैं। इन प्रमाणों में भी एक दो अपवादों को छोड़कर सामान्यतया कुण्डपुर का ही उल्लेख है। कुण्डलपुर के उल्लेख तो विरल ही हैं और जो हैं वे भी मुख्यतया परवर्ती ग्रन्थों के ही हैं। यहां हमें यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि जब क्रमशः महावीर के जीवन के साथ चमत्कारिक घटनाएं जुड़ती गईं, तो अहोभाव के कारण क्षत्रियकुण्ड और ब्राह्मणकुण्ड को भी नगर या पुर कहा जाने लगा। **कल्पसूत्र** में तो स्पष्ट रूप से क्षत्रियकुण्डग्राम और ब्राह्मणकुण्डग्राम का ही उल्लेख है। यहां इन्हें जो 'खत्तीयकुण्डगामेनयरे' कहा गया है उसमें ग्राम-नगर शब्द से यही भाव अभिव्यक्त होता है कि ये दोनों मूलतः तो ग्राम ही थे किन्तु वैशाली नगर के निकटवर्ती होने के कारण इन्हें ग्राम-नगर संज्ञा प्राप्त हो गई थी। वर्तमान में भी किसी बड़े नगर के विस्तार होने पर उसमें समाहित गांव नगर नाम को प्राप्त हो जाते हैं। वस्तुतः क्षत्रियकुण्ड ही महावीर की जन्मभूमि प्रतीत होती है और स्पष्टतया यह वैशाली का ही एक उपनगर सिद्ध होता है। पुरातात्विक साक्ष्यों की दृष्टि से वैशाली, नालंदा और लछवाड़ (जो जमुई के निकट है) की प्राचीनता में कोई संदेह नहीं किया जा सकता। किन्तु प्राचीन साहित्य में नालंदा के समीप किसी कुण्डपुर या कुण्डलपुर का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है।

कल्पसूत्र में आये उल्लेखानुसार महावीर स्वामी को केवलज्ञान जृम्भिक (जमुई) ग्राम के बाहर ऋजुवालिका नदी तट पर शाल वृक्ष के नीचे हुआ था। किन्तु उससे उसके समीपस्थ लछवाड़ भी महावीर का जन्मस्थल है, सिद्ध नहीं होता। प्राचीन जो भी उल्लेख हैं वे मूलतः क्षत्रियकुण्ड से संबंधित ही हैं। वैशाली के समीप वासोकुण्ड को महावीर का जन्मस्थल मानने के संबंध में केन्द्रीय शासन और इतिहासज्ञ वर्ग ने जो निर्णय लिया है, वह समुचित प्रतीत होता है।

इसका एक प्रमाण यह भी है कि वैशाली से प्राप्त एक मुद्रा पर 'वैशालीनामकुण्डे' ऐसा स्पष्ट लिखा हुआ है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि वैशाली के निकट कोई कुण्डग्राम रहा होगा और यही कुण्डग्राम क्षत्रियकुण्ड और ब्राह्मणकुण्ड ऐसे दो विभागों में विभाजित रहा होगा। अतः भगवान महावीर के जन्मस्थान को वैशाली के निकटवर्ती वासोकुण्ड को ही क्षत्रियकुण्ड मानना चाहिये। इस संबंध में एक परम्परागत अनुश्रुति यह भी है कि वासोकुण्ड के उस स्थल को जिसे महावीर का जन्म स्थल माना गया है उस पर आज तक भी हल नहीं चलाया गया है और वहां के निवासी शासकीय एवं विद्वानों के निर्णय के पूर्व भी उस स्थान को महावीर की जन्मभूमि के रूप में उल्लेखित करते रहे हैं। जहां तक नालंदा के समीपवर्ती कुण्डलपुर का प्रश्न है, न तो वहां नाथवंशीय क्षत्रियों का आवास ही था और न मगध जैसे साम्राज्य की राजधानी के एक उपनगर में किसी अन्य राजा का राज्य होने की संभावना थी। जमुई के निकटवर्ती लछवाड़ को लछवाड़ नाम कब मिला यह गवेषणा का विषय है। जमुई की प्राचीनता तो निर्विवाद है और उसका संबंध भी महावीर के केवलज्ञान स्थल का निकटवर्ती होने से महावीर के साथ जुड़ा हुआ है। किन्तु उसे महावीर का जन्मस्थान न मानकर आगमिक प्रमाणों के आधार पर केवलज्ञान स्थल ही माना जा सकता है।

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं के ग्रन्थों में क्षत्रियकुण्ड या कुण्डपुर की अवस्थिति विदेहक्षेत्र में बताई गई है। इस तथ्य की पुष्टि में दिगम्बर परम्परा के कुछ ग्रन्थों के सन्दर्भ श्री राजमल जैन ने प्रस्तुत किये हैं। पूज्यपाद देवनंदी की **निर्वाणभक्ति** में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि सिद्धार्थ राजा के पुत्र ने **भारत** देश के विदेह कुण्डपुर में देवी प्रियकारिणी को सुखद स्वप्न दिखाए और चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को उसने उन्हें जन्म दिया। इसी प्रकार आचार्य जिनसेन पुन्नाट ने (नवीं शती) **हरिवंश पुराण** में भारत देश के विदेह क्षेत्र के कुण्डपुर में महावीर के जन्म का उल्लेख किया है। इसी क्रम में **उत्तरपुराण** के रचियता गुणभद्र ने (विक्रम की दसवीं

शताब्दी) महावीर के जन्म स्थान कुण्डपुर को भारत के विदेह क्षेत्र में अवस्थित बताया है। इसी पुराण के ७५वें सर्ग में भी 'विदेहविषयेकुण्डसंज्ञायां' पुरी के रूप में उल्लेखित किया गया है। आचार्य पुष्पदंत ने **वीरजिनंदचरिउ** (विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी) में 'वैशाली कुण्डपुरे' ऐसा उल्लेख किया है। इससे भी ऐसा लगता है कि महावीर की जन्म स्थली कुण्डपुरी वैशाली के निकट ही रही। इसी प्रकार दामनंदी ने (१०वीं-११वीं शताब्दी) महावीर के जन्म स्थान कुण्डपुर को विदेह में स्थित बताया है। इसी तथ्य को असग (ग्यारहवीं शताब्दी) ने **वर्धमान चरित्र** में पुष्ट किया है। वे भी महावीर की जन्मस्थली कुण्डपुर की अवस्थिति विदेह क्षेत्र में बताते हैं। श्रीधर रचित **वड्ढमानचरिउ** (लगभग बारहवीं शती) में भी कुण्डपुर को विदेह क्षेत्र में माना गया है। सकलकीर्ति ने **वर्धमान चरित्र** में कुण्डपुर को विदेह क्षेत्र में अवस्थित माना है। पुनः मुनि धर्मचंद ने **गौमतचरित्र** (१७वीं शताब्दी) में कुण्डपुर को भरतक्षेत्र में विदेह प्रदेश के अन्तर्गत स्वीकार किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग ईसा की ५वीं शताब्दी से लेकर १७वीं शताब्दी तक दिगम्बर आचार्य एवं भट्टारक कुण्डपुर को विदेह क्षेत्र में अवस्थित ही मान रहे हैं। वस्तुतः महावीर का जन्मस्थल विदेहक्षेत्र में स्थित वैशाली का निकटवर्ती कुण्डपुर नामक उपनगर ही रहा है।

आगमों में 'कुण्डपुरग्रामनगर' ऐसा उल्लेख भी मिलता है। मेरी दृष्टि में ग्राम नगर ऐसा समासपद ग्रहण करने पर इसका अर्थ होगा नगर का समीपवर्ती गांव या वह गांव जो कालान्तर में किसी नगर का भाग या उपनगर बन गया हो।

यहाँ एक महत्वपूर्ण बात यह है कि गणिनी ज्ञानमती माताजी ने भी कुण्डलपुर का पक्ष लेते हुए भी उसे विदेह में स्थित तो माना ही है। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या दिगम्बर परम्परा के द्वारा मान्य नालंदा के समीप स्थित कुण्डलपुर अथवा श्वेताम्बर परम्परा के द्वारा मान्य जमुई के निकटवर्ती लछवाड़ को विदेह क्षेत्र में स्थित माना जा सकता है ? प्राचीन भारत के भूगोल का अध्ययन करने पर यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि वर्तमान कुण्डलपुर और लछवाड़ दोनों ही मगध क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। वे किसी भी स्थिति में विदेह क्षेत्र में स्थित नहीं माने जा सकते, क्योंकि प्राचीन भारतीय भूगोल के अनुसार विदेहक्षेत्र की सीमा स्पष्ट रूप से निर्धारित थी। इसकी पश्चिमी सीमा गण्डकी नदी (वर्तमान घाघरा) और पूर्वी सीमा कोशिकी नदी थी। दक्षिण में विदेह क्षेत्र की सीमा का निर्धारण गंगा नदी और उत्तर में हिमालय पर्वत निर्धारित करता था। यदि महावीर के जन्म स्थान की खोज कहीं करनी होगी तो इस विदेह क्षेत्र

की सीमा में ही करनी होगी और यह एक सुनिश्चित सत्य है कि नालंदा समीपस्थ कुण्डलपुर और जमुई के समीप स्थित लछवाड़ दोनों ही विदेह क्षेत्र की सीमा के बाहर हैं और मगध क्षेत्र की सीमा के अन्तर्गत आते हैं। अतः साहित्यिक प्रमाण स्पष्ट रूप से वैशाली के निकट वर्तमान वासुकुण्ड के पक्ष में ही जाते हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों से यह भी सिद्ध है कि महावीर के काल में नालंदा राजगृही का एक उपनगर या सन्निवेश माना जाता था। वर्तमान में जो बड़गांव कुण्डलपुर में दिगम्बर और श्वेताम्बर मंदिर हैं उनमें स्थित प्रतिमाएं सोलहवीं शताब्दी के पूर्व की नहीं हैं। नालंदा की प्राचीनता के संबंध में जो पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध होते हैं वे अधिकांश बौद्ध परम्परा से ही संबद्ध हैं। जैन परम्परा से संबद्ध अभी तक कोई भी ऐसा पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है जो महावीर के जन्मस्थल पर स्थित किसी प्राचीन मंदिर आदि की अवस्थिति को सिद्ध करे। इसी प्रकार जमुई के निकट स्थित लछवाड़ में प्राचीन अवशेष उपलब्ध होते हैं। लेखक स्वयं जिस समय लछवाड़ गया था उस समय वहां नये मंदिर के निर्माण के लिये प्राचीन मंदिर को गिरा दिया गया था। यद्यपि जिस मंदिर को गिराया गया था, वह तो अतिप्राचीन नहीं था, किन्तु उसके नीचे जो चबूतरा था उस चबूतरे में तथा उस चबूतरे को खोदने पर निकली सामग्री में लेखक को कुछ प्राचीन ईंटों के खण्ड उपलब्ध हुए थे जो कम से कम मौर्य काल के पश्चात् के और गुप्त काल के पूर्व के थे। मंदिर में जो मूलनायक महावीर स्वामी की प्रतिमा थी, वह स्पष्ट रूप से पालकालीन अर्थात् ९-१०वीं शताब्दी की थी। इससे यह तो निश्चित होता है कि लछवाड़ में महावीर की स्मृति में ही प्राचीनकाल में कोई मंदिर अवश्य बना था, किन्तु वह महावीर का जन्मस्थल था यह स्वीकार करने में अनेक बाधाएं हैं। इस संबंध में डॉ. सीताराम राय का एक लेख **श्रमण**, अगस्त १९८९ में प्रकाशित हुआ था। सीताराम राय ने जमुई अनुमण्डल के लछवाड़ को जो महावीर का जन्म स्थान मानने का प्रयत्न किया है और उसकी पुष्टि में **आवश्यकचूर्णि** में उल्लेखित उनकी विहारयात्रा के कुछ गांव यथा- कुमार, कोल्लाग, मोरक, अस्थिय ग्राम का समीकरण वर्तमान कुमार, कोन्नाग, मोरा और अस्थावा से करने का जो प्रयत्न किया है, वह नाम साम्य को देखकर तो थोड़ा सा विश्वसनीय प्रतीत होता है किन्तु जब हम इनकी दूरियों का विचार करते हैं तो वैशाली के निकटवर्ती कुमार, कोल्हुवा, अत्थिय गांव आदि से ही अधिक संगति मिलती है। वर्तमान में भी भिन्न-भिन्न प्रदेशों और मण्डलों

में समान नाम वाले गांवों के नाम उपलब्ध हो जाते हैं। वस्तुतः डॉ. सीताराम राय ने जो समीकरण बनाने का प्रयास किया है वे दूरियों के हिसाब से समुचित नहीं हैं।

वर्धमान महावीर के वैशालिक होने का एक अन्य प्रमाण हमें **थेरगाथा** की **अट्ठकथा** (व्याख्या) में मिलता है। **थेरगाथा** में वर्धमान थेर का उल्लेख है। उसमें कहा गया है कि दान के पुण्य के परिणामस्वरूप वर्धमान ने देवलोक से च्युत होकर गौतमबुद्ध के जन्म लेने पर वैशाली के लिच्छवी राजकुल में उत्पन्न होकर प्रव्रज्या ग्रहण की। (इमस्मिं बुद्धुप्पादे वेसालियं लिच्छवि राजकुले निब्बत्ति वडढमानो तिस्स नामं अहोसि--। **थेरगाथा अट्ठकथा** नालन्दा संस्करण पृ. १५३)। इस प्रकार यहाँ उन्हें वैशाली के लिच्छवी राजकुल में जन्म लेने वाला बताया गया। यद्यपि परम्परागत विद्वानों का यह विचार हो सकता है कि ये वर्धमान बौद्ध परम्परा में दीक्षित कोई अन्य व्यक्ति होंगे, किन्तु हमारा यह स्पष्ट अनुभव है कि जिस प्रकार **ऋषिभाषित** सभी अर्हतऋषि निर्ग्रन्थ परम्परा के नहीं है, उसी प्रकार **थेरगाथा** में वर्णित सभी स्थविर बौद्ध नहीं हैं। वैशाली के लिच्छवी राजकुल में उत्पन्न बुद्ध के समकालिक वर्धमान थेर वर्धमान महावीर से भिन्न नहीं माने जा सकते। **थेरगाथा** की अट्ठकथा के अनुसार उन्होंने आंतरिक और बाह्य संयोगों को छोड़कर, रूपराग, अरूपराग तथा भवराग को समाप्त करने का उपदेश दिया तथा यह कहा है कि अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों को साक्षीभाव से देखते हुए भवराग और संयोजनों का प्रहाण संभव है। क्योंकि उनके ये विचार **आचारांग** एवं **उत्तराध्ययन** में भी मिलते हैं इस उपदेश से यह स्पष्ट हो जाता है कि **थेरगाथा** में वर्णित वर्धमान थेर अन्य कोई नहीं, अपितु वर्धमान महावीर ही हैं। इस आधार पर भी यह सिद्ध होता है कि महावीर का जन्म वैशाली के लिच्छवी कुल में हुआ था। महावीर के प्रवर्जित होने का उल्लेख करते समय यहां स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि संवेग (वैराग्य) उत्पन्न होने पर उन्होंने अग्निकर्म का त्याग करके संघ से क्षमायाचना करके कर्म परम्परा को देखकर के प्रव्रज्या ग्रहण की। यह समग्र कथन भी जैन (निर्ग्रन्थ) परम्परा के अनुकूल ही है। अतः इससे भी यही सिद्ध होता है कि **थेरगाथा** के वैशाली के लिच्छवी कुल उत्पन्न वर्धमान थेर वर्धमान महावीर ही हैं। इस प्रकार बौद्ध **त्रिपिटक** साहित्य भी महावीर के जन्मस्थल के रूप में विदेह के अन्तर्गत वैशाली को ही मानता है।

पाश्चात्य विद्वानों में हरमनजैकोबी, हार्नले और विंसेण्टस्मिथ तथा भारत में मुनि श्री कल्याणविजयजी, डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, पं. सुखलालजी

आदि जैन-अजैन सभी विद्वान वैशाली के निकटस्थ कुण्डग्राम को महावीर का जन्म स्थल मानते हैं।

बौद्धग्रन्थ **महावग्ग** (ईस्वीपूर्व ५वीं शती) में वैशाली के तीन क्षेत्र माने गये हैं - १. वैशाली, २. कुण्डपुर एवं ३. वाणिज्यग्राम। महावीर का लिच्छवी राजकुल में जन्म मानने पर भी यह स्पष्ट है कि **महावग्ग** के अनुसार वैशाली में ७७०७ राजा थे। अतः महावीर के पिता को राजा मानने में बौद्ध साहित्य से भी कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि वहाँ राजा शब्द का अर्थ वैशाली महासंघ की संघीय सभा का सदस्य होना ही है।

मेरी यह सुनिश्चित धारणा है कि जमुई मण्डल के क्षेत्र का संबंध महावीर के साधना एवं केवलज्ञान स्थल से अवश्य रहा है तथा जिसे वर्तमान में लछवाड़ कहा जाता है उसका संबंध लिच्छिवयों से हो सकता है, किन्तु इस नाम की भी प्राचीनता कितनी है यह शोध का विषय है। यह निश्चित है कि लगभग १५-१६वीं शती से ही श्वेताम्बर परम्परा में लछवाड़ के समीपवर्ती क्षेत्र को महावीर के जन्म स्थान मानने की परम्परा विकसित हुई है। भगवान महावीर ने अर्धमागधी भाषा में अपना प्रवचन दिया था इसलिये वे मगध क्षेत्र के निवासी होना चाहिए, ऐसी जो मान्यता लछवाड़ के पक्ष में जाती है वह समुचित नहीं है। महावीर की भाषा मागधी न होकर अर्धमागधी है। यदि महावीर का जन्म और विचरण केवल मगध क्षेत्र में ही हुआ होता तो वे मागधी का ही उपयोग करते, अर्धमागधी का नहीं। अर्धमागधी स्वयं ही इस बात का प्रमाण है कि उनकी भाषा में मागधी के अतिरिक्त अन्य समीपवर्ती क्षेत्रों की भाषाओं एवं बोलियों के शब्द भी मिले हुए थे। मैं जमुई अनुमण्डल को महावीर का साधना स्थल एवं केवलज्ञान स्थल मानने में तो सहमत हूं, किन्तु जन्म स्थल मानने में सहमत नहीं हूं, **अतः महावीर का जन्म स्थल वैशाली के समीप वर्तमान वासुकुण्ड ही अधिक प्रामाणिक लगता है।** जैन समाज को उस स्थान के सम्यक् विकास हेतु प्रयत्न करना चाहिए।

- ३५, ओसवाल सेरी, सागर टेन्ट हाउस,
नई सड़क, शाजापुर-४६००१

रयणचूडरायचरियं में वर्णित कलाएं

- डॉ. हुकमचंद जैन

आचार्य नेमिचन्द्र सूरि अपरनाम देवेन्द्र गणि चन्द्र कुल के आम्रदेव सूरि के शिष्य थे। ये ११वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं १२वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के माने जाते हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना प्राकृत भाषा में की है। ये रचनाएं गद्य-पद्य एवं चम्पू शैली में हैं। रचनाओं के नाम हैं- १. **महावीर चरिय** २. **उत्तराध्ययन वृति (उत्तराध्ययन की सुखबोधा टीका)**, ३. **आख्यानक मणिकोश**, ४. **आत्मबोध कुलक,** और ५. **रयणचूडरायचरिय**। ये कृतियां गुजरात में अन्हिलपाटन में राजा उदयवराह कर्ण के राज्यकाल (१०६३-९३ ई.) में रची गई थीं। **रयणचूडरायचरियं** चम्पू शैली में रचित है। यह एक धर्म कथा है जिसमें दान, शील, तप एवं भावना सम्बन्धी अवान्तर कथाओं के सहारे मूल कथा आगे बढ़ती है।

यह कथा छह खण्डों में विभाजित है। कथा का प्रारंभ गौतम स्वामी द्वारा राजा श्रेणिक को धर्म प्रतिपादन के रूप में रत्नचूड (रयणचूड) की कथा सुनाने से होता है। प्रथम खण्ड में वह बतलाते हैं कि पूर्व भव में वह कंचनपुर में बकुल नामक माली था जो जिनेन्द्र पूजा के प्रभाव से मृत्यु को प्राप्त कर राजा कमलसेन एवं रानी रत्नमाला के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। चूंकि रानी ने गर्भ के समय रत्न के ढेले के दर्शन किये थे, अतः उसका नाम रत्नचूड (रयणचूड) रखा गया।

द्वितीय खण्ड में रत्नचूड का हाथी द्वारा अपहरण कर तालाब में गिरा देने और एक तपस्वी द्वारा उसे बचाकर अपने आश्रम ले जाने का वर्णन है। साथ ही रत्नचूड का तिलक सुन्दरी से विवाह होने का वर्णन है।

तृतीय खण्ड में मदनकेशरी विद्याधर द्वारा तिलक सुन्दरी का अपहरण कर लेने और उसको खोजते हुए रयणचूड के निर्जन रिष्टपुर नगर पहुंचने का वर्णन है। उस नगर में रयणचूड की भेंट वानरी रूप में सुरानंदा नामक युवती से हुई। अपनी विद्या द्वारा रयणचूड ने उसका उद्धार कर उससे विवाह कर लिया। इसके अतिरिक्त उसने राजश्री, पद्मश्री और राजहंसी कन्याओं से भी विवाह कर पांच पत्नियों का सुख भोगा।

चतुर्थ खण्ड में रत्नचूड के अपनी पांचों पत्नियों और माता-पिता के साथ मेरु पर्वत पर जिनेन्द्र का दर्शन करने जाने और वहां पर सुरप्रभ मुनि का धर्मोपदेश सुनने का वर्णन है। मुनि ने दान के दृष्टांत स्वरूप राजश्री के पूर्व भव, शील के दृष्टान्त

में पद्मश्री के पूर्व भव, तप धर्म के दृष्टांत में राजहंसी के पूर्व भव और भावना धर्म के दृष्टान्त में सुरानन्दा के पूर्व भव की कथा सुनाई। मुनि का उपदेश सुनकर सभी लोगों की धर्म में आस्था दृढ़ हो गई।

पंचम खण्ड में रत्नचूड के यह पूछने पर कि उसका तिलकसुन्दरी से विवाह क्यों हुआ था, सुरप्रभ मुनि ने उसके द्वारा पूर्वजन्म में किये कुकृत्य की कथा सुनाई। साथ ही अमरदत्त और मित्रानंद की भी एक कथा सुनाई जिसमें दुष्चेष्टा के परिणामस्वरूप उन्हें अगले भव में कष्ट सहने पड़े। मुनि के धर्मोपदेश से रत्नचूड़ आदि सभी ने श्रावक के व्रत स्वीकार किये।

छठे खंड में रत्नचूड द्वारा धार्मिक जीवन जीते हुए अनेक धार्मिक अनुष्ठान करने, मंदिरों का निर्माण करवाने, पूजा, दान आदि कार्य करने और केवलज्ञान प्राप्त करने का वर्णन है और उल्लेख है कि आगे चलकर वह मोक्ष भी प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार गौतम स्वामी ने श्रेणिक राजा को रत्नचूड का चरित्र संक्षेप में सुनाया। जिन पूजा के महत्व आदि के रूप में यह कथा प्रसिद्ध है।

रयणचूडरायचरियं की कथावस्तु से प्राचीन भारतीय कलाओं के संबंध में भी कुछ जानकारी प्राप्त होती है। यद्यपि ग्रन्थ में उपलब्ध कला से संबंधित सामग्री मध्ययुग की कला के संबंध में कोई विशेष तथ्य प्रस्तुत नहीं करती है, किन्तु उससे प्राचीन संस्कृति की पुष्टि अवश्य होती है। ग्रन्थ में उपलब्ध सामग्री संक्षेप में निम्नवत है-

चित्रकला- रयणचूडरायचरियं में चित्रकला के अधिक संदर्भ नहीं हैं। तिलक-सुन्दरी के विवाह के प्रसंग में उसके पिता ने यह विचार किया था कि विभिन्न राजकुमारों के चित्रफलक मंगवाकर राजकुमारी को दिखाये जायें। किंतु राजकुमारी की माता ने चित्रफलकों से वर खोजना ठीक नहीं समझा, क्योंकि चित्र-कार्य में विविधता होने से निर्णय करना कठिन है।

यह उल्लेख व्यक्तिगत चित्र बनाने के संदर्भ में है। नायक-नायिका द्वारा चित्र-दर्शन करने की परिपाटी अति प्रचलित थी। इन व्यक्तिगत चित्रों में सौंदर्य का आकर्षण अधिक होता था जिसे देखकर नायक-नायिका एक दूसरे पर मोहित होते थे। **कुवलयमाला** में ऐसे व्यक्तिगत पट्ट-चित्रों का उल्लेख है।

रयणचूडरायचरियं में चित्र-कला से सम्बंधित दूसरा संदर्भ एक कथात्मक पट्ट-चित्र का है। पुरुषोतम-राजा ने पुरुषद्वेषिनी राजकुमारी कमलश्री के द्वेष को दूर करने के लिए उसके पूर्व जन्म का चित्र-पट्ट बनवाकर उसके पास भिजवाया था। उस चित्र में एक जलता हुआ हाथी जल से भरी हुई सूंड से अपनी हथिनी की आग

को बुझाता हुआ दिखाया गया था। इस चित्र को किसी सीखे हुए पुरुष के द्वारा नगर में घुमाया गया। राजकुमारी कमलश्री ने उस चित्रकार से चित्र की घटना को समझा तो उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। इस तरह के पट्ट -चित्र बनाने की परंपरा बहुत प्राचीन है। पट्ट-चित्र के द्वारा पूर्व जन्म को स्मरण कराने के भी साहित्य में कई उल्लेख मिलते हैं। ग्रन्थ में अमरदत और मित्रानंद की कथा में चित्रशालिका का भी उल्लेख हुआ है, जो संभवतः राजभवन में बैठक-खाना के लिए प्रयुक्त होती थी। संभवतः चित्रशालिका में कई चित्र लगे रहते होंगे।

स्थापत्य-कला- इस कृति में तीन बार मंदिरों का उल्लेख हुआ है। बकुलमाली ऋषभदेव के मंदिर में पुष्प बेचने के लिए गया था। उस कंचनपुर नगर में ऊँचे शिखर वाले देव-मंदिर थे। उनमें ऋषभदेव का एक मंदिर था जो सैकड़ों स्वर्ण-खंभों पर स्थापित था। आकाश-तल को छूने वाले उसके शिखर थे, उन पर स्वर्ण के कलश थे, गर्भगृह में ऋषभदेव की मूर्ति थी। मंदिर का दूसरा प्रसंग शांतिनाथ-जिन-मंदिर का है जिसे वेताढ्य-पर्वत पर बनवाया गया था। इस मंदिर के वर्णन से मंदिर स्थापत्य-कला के संबंध में जानकारी मिलती है कि वह मंदिर ऊँची और विशाल चौकी पर निर्मित था; उसका फर्श स्फटिक मणियों से बना हुआ था; दीवारें मरकत मणि से सुशोभित थीं; करोंत की तरह उसका परकोटा था; उसमें एक विजयद्वार तथा बड़ा दरवाजा था; उसका तोरण द्वार कई प्रकार की मणियों से खचित था; मंदिर पर चढ़ने के लिए सोपान-पंक्ति थी; मंदिर के ऊँचे शिखरों पर स्वर्ण के दंडों पर पताकाएं लगी हुई थीं; पताकाओं में मनोहर आवाज वाली घूंघरू बंधी हुई थी; उस मंदिर की दीवारों पर मनुष्य, हाथी, घोड़े और रथ की मूर्तियों से चतुरंगिणी सेना बनी हुई थी। मंदिर के शिखर पर पद्मराग-मणि का कलश था; मंदिर के बीचों-बीच मधुर आवाज वाला घंटा लगा हुआ था; मंदिर में सोने और रत्न की बनी हुई शालभंजिकाएं थीं; पिंजरे की तरह गोल उसका करोड़क (पृष्ठभाग) था; और उसके भीतर गर्भगृह था।

ग्रन्थ में अमरदत्त और मित्रानंद की कथा के प्रसंग में पाटलिपुत्र में एक मंदिर का वर्णन है। वह मंदिर एक बगीचे में वापिकाओं से घिरा हुआ था। उसकी कारीगरी श्रेष्ठ थी। उस मंदिर का करोड़क भाग श्रेष्ठ शालिभंजिकाओं से सुशोभित था तथा वहाँ अनेक प्रकार के जीवों की आकृतियां बनी हुई थीं। उस मंदिर का उतरंग और देहली सुन्दर लकड़ी से बना हुआ था। मंदिर के बायीं ओर रति की तरह रूपवती और प्रसन्न आकृति वाली मनोरम स्तंभ-शालिभंजिका थी। ग्रन्थ के अन्त में रत्नचूड द्वारा अनेक खंभों की रचना वाले मनोहर, ऊँचे चैत्य-भवनों (मंदिरों) को बनवाने का उल्लेख है।

ग्रन्थ में वर्णित मंदिरों के इस विवरण से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार मध्ययुग की मंदिर-निर्माण-कला से पूर्णतया परिचित था। मध्ययुग में कई बड़े-बड़े मंदिर बनवाये गये थे। दसवीं शताब्दी के पूर्व मध्यप्रदेश में देवगढ़ में कई मंदिर बन चुके थे जो अपनी कला के लिए प्रसिद्ध थे। लगभग ११वीं शताब्दी में (वि.सं. १०८५) खजुराहो में शांतिनाथ का जिन-मंदिर निर्मित हो चुका था। इसी समय के लगभग (१०३२ ई.) आबू में आदिनाथ तीर्थंकर का विशाल मंदिर भी निर्मित हो चुका था। इन मंदिरों की कला और स्थापत्य से **रयणचूडरायचंरियं** में वर्णित मंदिरों का वर्णन मिलता जुलता है। सूक्ष्मता से इनकी तुलना करने पर मंदिर-स्थापत्य कला के कई तथ्य प्राप्त हो सकते हैं। शांतिनाथ के मंदिर की पताकाओं में घुंघरूओं की मधुर आवाज का ग्रन्थकार ने जो उल्लेख किया है उसका साक्षात् रूप वर्तमान में रणकपुर के मंदिर में देखा जा सकता है, जहाँ हवा के प्रवाह से पताकाओं की घंटियां मधुर आवाज करती रहती हैं।

मूर्तिकला- ग्रन्थ में वर्णित मंदिर के प्रसंग में शांतिनाथ जिनेन्द्र तथा ऋषभदेव की अलंकृत मूर्ति का उल्लेख हुआ है। उन मूर्तियों का विवरण श्वेताम्बर-परंपरा की अलंकृत जिन-मूर्तियों के अनुरूप है। शांतिनाथ जिनेन्द्र की मूर्ति को आठ प्रतिहारों से युक्त बताया गया है, जो उनके त्रिभुवन के प्रभुत्व के सूचक थे। शांतिनाथ जिनेन्द्र की मूर्ति का सुन्दर वर्णन ग्रन्थकार ने किया है। वह मूर्ति अपनी प्रशान्त देह से वीतरागता को प्रकट कर रही थी। दृष्टि के शांत-राग से हृदय के करुण रस को सूचित कर रही थी। प्रसन्न मुख-कमल से समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री भाव प्रकट कर रही थी। आठ महा प्रतिहारों से त्रिभुवन की प्रभुता को दिखा रही थी तथा वह मूर्ति स्वर्ण और रत्नों से निर्मित कल्पवृक्ष के पुष्पों से अलंकृत एवं दिव्य-आभूषणों से सुशोभित थीं। इस वर्णन में जिन आठ प्रतिहारों का उल्लेख आया है वे हैं- अशोक वृक्ष, दिव्य-पुष्प-वृष्टि, दिव्य ध्वनि, चामर, आसन, भामण्डल, दुन्दुभि और आतपत्र।

ग्रन्थ में शालभंजिका का कई बार उल्लेख हुआ है। मंदिर वर्णन के प्रसंग में कहा गया है कि मंदिर के करोड़क में श्रेष्ठ शालभंजिकाऐं सुशोभित थीं। शांतिनाथ के मंदिर में अनुपम शोभा वाली सुन्दर सोने और रत्न की बनी हुई शालभंजिकाएं अप्सराओं की तरह थी। रत्नचूड को देखने के लिए बाल्कनी में उपस्थित कुछ स्त्रियां शालभंजिकाओं की तरह थीं।

ग्रन्थ में शालभंजिका संबंधी चौथा प्रसंग विशेष महत्व का है। अमरदत्त मित्रानंद के साथ जब पाटलिपुत्र के मंदिर में पहुँचा तो उसने अनेक पुतलियों से सुशोभित

लकड़ी की शाखा के उतरंग और देहली भाग को देखा तथा उसकी बायीं ओर रति की तरह रूपवती और प्रसन्न आकृति वाली मनोरम स्तंभ शालभंजिका को देखा। उसको देखकर अमरदत्त ने उसके सौंदर्य के संबंध में जो सोचा उससे विदित होता है कि शालभंजिका का केश-कलाप सुन्दर था, नयन-निक्षेप (नेत्रों का फैलाव) अपूर्व था, मुख सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर था, स्तन-कलश श्रेष्ठ थे, गंभीर नाभि थी, सुन्दर कटि-बिम्ब था।

इस तरह वह शालभंजिका सर्वांग रूप से इतनी सुन्दर थी कि अमरदत्त उसको एकटक देखता रहा और उसमें आसक्त हो गया। उसकी इच्छा थी कि उसकी जितनी आयु है वह इसी पुतली (शालभंजिका) को देखते हुए पूरी हो।

इस विवरण से ज्ञात होता है कि यह स्तंभ-शालभंजिका पत्थर की बनी हुई थी और उसे सोपारक के निवासी मूर्तिकार सूर्यदेव ने बनाया था। अपने मित्र के प्राणों की रक्षा के लिए मित्रानंद जब उस मूर्तिकार से मिला तो उसने बताया कि उज्जैनी की राजकुमारी रत्नमंजरी के सौंदर्य की प्रतिकृति के रूप में ही शालभंजिका को बनाया गया है। जब रत्नमंजरी राजकुमारी को उस मंदिर में लाया गया तो दोनों को देखकर लोग आश्चर्य करने लगे कि शालभंजिका को देखकर उसके अनुरूप ब्रह्मा ने राजकुमारी रत्नमंजरी को बनाया है अथवा राजकुमारी को देखकर उसके अनुरूप किसी कारीगर ने शालभंजिका को बनाया है।

इस ग्रन्थ के शालभंजिका संबंधी उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शालभंजिकाएं प्राचीन समय से मध्ययुग तक के मंदिरों में बनायी जाती रही हैं। प्राचीन साहित्य में शालभंजिका के कई विवरण प्राप्त होते हैं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने शालभंजिकाओं पर विशेष प्रकाश डाला है।

रयणचूडरायचरियं में वर्णित शालभंजिका को स्तंभ-शालभंजिका कहा गया है। मथुरा के कुषाणकालीन वेदिका स्तंभों पर इस प्रकार की स्तंभ-शालभंजिकाएं निर्मित हैं। भवनों में खंभों के ऊपर जो तिरछी स्त्री मूर्ति बनाई जाती है वह स्तंभ-शालभंजिका का विस्तृत रूप है। प्राकृत साहित्य में इसके कई उल्लेख हैं।

–सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष,
जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग,
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर

जैन कला में नाग–आकृतियाँ

– डॉ० विमला जैन 'विमल'

भारतीय कला में विभिन्न रूपाकृतियों की भाँति नाग-आकृतियों का भी अपना अलग अस्तित्व है, जहाँ बाह्य स्वरूप में अनेक भंगिमाओं में उसे सौन्दर्यात्मक रूपाकार प्रदान किया गया है वहीं उसका आधिदैविक प्रतीकात्मक महत्व भी अपने में रहस्यात्मक दिव्यता से ओतप्रोत है। विभिन्न धर्मों तथा संस्कृति और साहित्य में भी नाग या नागेन्द्र की विशेष परिचर्चा रही है। जैन कला में नाग-आकृतियों का रूपांकन बड़ा ही अभिरुचिपूर्ण तथा सम्मोहक रहा है, साथ ही उसका प्रतीकात्मक महत्व भी बड़ा रोचक है।

भारतीय कला और संस्कृति में जैन कला और संस्कृति प्रागैतिहासिक काल से ही अपना अलग अस्तित्व रखते हुये अनवरत शाश्वत रही है। चारुशिल्प के बाह्य सौन्दर्य के साथ उसका आन्तरिक भावात्मक पक्ष तथा उसमें निहित रहस्यात्मक अर्थ एवं दर्शन जब ज्ञात किया जाता है तो जैन कला की पहचान अलग से दृष्टिगोचर होने लगती है। कला का रसास्वादन करने के लिये जैन दर्शन के महत्व को जानना आवश्यक है। यूं तो जैन कला में असंख्य रूपाकृतियां हैं जो अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं किन्तु नाग आकृतियों का अपना अलग ही आकर्षण है। भारतीय कला में 'नाग पूजा' तथा नाग आकृतियों का अंकन अति प्राचीन है। विद्वानों के मतानुसार नाग सम्प्रदाय, नाग वंश, नाग लोक आदि की कल्पना का अस्तित्व मानव की आदि सभ्यता के साथ जुड़ा हुआ है। सर्प प्रकृति की भयानक शक्ति का प्रतीक है। इसे पूर्व जन्म का भी प्रतीक माना है। अतः आदिमानव नाग पूजा में विश्वास रखता था, ऐसे अवशेष प्राप्त हुये हैं। नाग पुनर्जीवित हो जाता है तथा केचुली छोड़ता रहता है। इसलिये आत्मा का बन्धन त्याग या पूर्व जन्म की धारणा बलवती होती है।

ईसाई धर्म के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने दो वृक्ष लगाये और आदम को अमृत फल खाने को बताया। दूसरा वृक्ष भले-बुरे का ज्ञान कराने वाला तथा मृत्यु फल देने वाला था तथा उसके फल कभी भी न खाने का आदेश दिया, परन्तु उसी समय सर्प आ गया और उसने आदम को दूसरे वृक्ष का फल खाने को उकसाया, और आदम ने दूसरे वृक्ष का फल खा लिया और तभी से मानव भलाई-बुराई समझने लगा तथा सुख-दुख तथा मृत्यु के झंझट में फंस गया। अतः सर्प को शैतान का प्रतीक माना है। योरोपीय विश्वास में इसे मातृशक्ति का प्रतीक माना है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि

से नाग विनाशात्मक शक्ति का प्रतीक है। जल और पृथ्वी से घनिष्ठता रखने के कारण इसे पाताल, पृथ्वी तथा स्वर्ग के जीवों का प्रतीक कहा जाता है। यही कारण है कि यह आधिदैविक प्रतीक स्वरूप में रहस्यात्मक दिव्यता लिये हुये है। नागेन्द्र या धरणेन्द्र के नाम से वह उच्चासन का अधिकारी तथा पाताल लोक का अधिनायक, सर्वशक्तिमान के रूप में कष्ट-निवारक आराध्य है।

प्रागैतिहासिक अवशेषों के आधार पर नाग को अवैदिक देव माना है, परन्तु **अथर्ववेद** में नाग सम्बंधित मंत्र हैं तथा तक्षक व सर्पबलि की चर्चा उल्लेखनीय है। ग्रामीण जनता नाग-नागिन को अर्ध देव-देवी के रूप में देखते हैं। नाग पंचमी का त्यौहार इसी भाव को स्पष्ट करता है। नाग को जहाँ स्वर्ग लोक, पाताल लोक, और पृथ्वी लोक का अधिनायक दिव्य प्रतीक माना है, वहीं हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्म में इसका आधिदैविक प्रतीकात्मक महत्व तथा कलात्मक स्वरूप अतिशयोक्ति के साथ दर्शन और कला, संस्कृति में आविर्भूत है। हिन्दू धर्म के अनुसार पृथ्वी शेषनाग पर ही अवस्थित है। विष्णु भगवान नागशैया पर विश्राम करते हैं तथा उनके वाराह अवतार के स्वरूप में नाग को कुचलने की परिचर्चा है। श्री कृष्ण का कालियदह धर्म तथा लोकोक्ति में विशेष चर्चित है। बलदेव व लक्ष्मण को शेषनाग का अवतार माना जाता है। **रामायण** में नागकन्या सुलोचना तथा नागपाश की चर्चा मुख्य है। भगवान शिव के अलंकार छोटे-बड़े नाग ही होते हैं। गणपति की सूंड की कल्पना में भी नाग का स्वरूप समन्वित है। इसी प्रकार बौद्ध धर्म व कला-साहित्य में मूचलिन्द, कालिय इलायत्र आदि नाग देवों की परिचर्चा है। बोधिसत्व के रूप में नाग देव को संभ्रान्त रूप में सुन्दर आकर्षक मानवाकृति में एक, दो, तीन, पांच, या सात फणी मुकुट में नागराज को आलेखित किया है। बौद्ध कला में नागराज व नागकन्या स्वरूप में दिव्यता का अंश समन्वित करते हुये मिश्रित आकृति में रूपांकित किया है। इनमें स्वाभाविकता, मौलिकता, प्रभावोत्पादकता का समन्वय आश्चर्यजनक है। कला जगत में सिंहव्याल, गजव्याल, अश्वव्याल, वृषभव्याल, मेषव्याल, महिषव्याल, शुकव्याल, नरव्याल, नागकन्या की कलात्मक रूपाकृतियां कलापंडितों की कल्पना की ऊँची उड़ान ही कही जायेगी। इन मिश्रित रूपाकृतियों में मुख सिंह, गज, अश्व आदि का है एवम् शरीर सर्प का। इसी प्रकार नाग कन्या में मुख व वक्ष नारी रूप में तथा अधोअंग नागाकृति है। इस प्रकार की रूपाकृतियां ५०० ई. पू. की कला में आरम्भ हो गयी थीं। २०० ई. पू. से ५०० ई. के मध्य बने अजन्ता के भित्तिचित्रों में नाग आकृतियों की विविधता दर्शनीय है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत में अनेक प्रबल नाग सत्तायें रही हैं। पार्श्वनाथ नाग जाति की एक शाखा 'उरगवंश' में पैदा हुये थे। उस काल में नाग जाति के राजतंत्र या गणतंत्र जातीय शासन में थे और इनके इष्ट देव पार्श्वनाथ थे। अहिछत्रा (जिला बरेली) से पांचाल राजा जयगुप्त के सिक्कों पर नाग आकृतियां हैं जो 'आदि नाग' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भूमिमित्र के सिक्के तथा उज्जैन की मुद्राओं पर भी नागआकृतियां मिलती हैं। प्रस्तर तथा धातु के सिक्कों पर नागआकृतियां यह इंगित करती हैं कि नाग पूजन या नाग को बहुमान देने की प्रथा अति प्राचीन है।

जैन कला शैली में भी नाग आकृतियों को बहुमान देते हुये रूपांकित किया गया है। उनका आधिदैविक प्रतीकात्मक महत्व के साथ कल्पना तथा कलात्मकता में विविधता के साथ अंकन किया गया है। वास्तु तथा मूर्तिकला में विशेष रूप से कल्पना और यथार्थता का मणि-कांचन संयोग करके जैसे चमत्कारिक दिव्यता भर दी है। जैन धर्म में तीर्थंकर की माता को सोलह स्वप्नों में एक स्वप्न धरणेन्द्र (नागराज) का विमान भी दिखाई देता है जो नागलोक की दिव्यता तथा उच्चासन को अभिभाषित करता है। भगवान सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं में सर्पफण की परम्परा अति प्राचीन रही है। भगवान पार्श्वनाथ की तो लगभग सभी मूर्तियां नागफणी मण्डित मिलती हैं। सर्वाधिक मंदिरों में मूर्तियां भगवान पार्श्वनाथ की ही प्रतिष्ठित हैं तथा हो रही हैं जो इस बात का प्रमाण है कि उनका कलात्मक स्वरूप कलाकार तथा दर्शकों एवं भक्तों को विशेष आकर्षित करता है। वास्तव में देखा जाय तो परम्परा और मौलिकता कला के दो अभिन्न अंग हैं। अतः भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति के साथ नाग फण का अंकन परम्परा बन गया है और इसमें कलाकार को अपनी मौलिकता और कल्पना को अभिव्यक्त करने की गुंजायश बनी रहती है।

भगवान पार्श्वनाथ का उरगवंशी होना, पद्मावती-धरणेन्द्र का उनकी यक्षी-यक्ष होना, पार्श्वकुमार द्वारा मरणासन्न युगल नाग को णमोकार मंत्र सुना सुगति का योग देना तथा कमठासुर द्वारा उपसर्ग किये जाने पर धरणेन्द्र-पद्मावती का उपसर्ग निवारण करना तथा उसी समय शुक्ल ध्यान की चरम उत्कृष्टि पर पहुंच कैवल्योपलब्धि हो अरहन्तवास्था को प्राप्त होना आदि ऐसी घटनायें हैं जो भगवान पार्श्वनाथ का नाग से सम्बन्ध स्थापित करने की परम्परा को आश्रय देती हैं। अतः भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के साथ सर्प विभिन्न मुद्राओं में मंडित होने लगा। नाग फण की परम्परा एक शाश्वत सत्य के रूप में भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा का आवश्यक अंग बन गयी और रूपशिल्पी ने नाग आकृतियों में कल्पना का लावण्य

भर कर मौलिकता को चमत्कारिक दिव्यता में प्रतिरूपित करना अपना अहो भाग्य बना लिया। जैन कला में नाग आकृति मुख्यतः चार प्रकार से रूपांकित हुई है। पहली भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति के साथ, नागफण मुकुट की तरह पांच, सातं, नौ, ग्यारह या सहस्त्र फण के रूप में और दूसरी प्रकार की नागआकृतियां धरणेन्द्र-पद्मावती के रूप में, तृतीय प्रकार की नाग आकृतियां अलंकरण या शोभन के रूप में बनाई गयी हैं। सामान्य रूप में नागांकन वर्णनात्मक चित्रों में दृष्टव्य है।

भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमायें स्वयं में नागवंशी (उरगवंशी) अधिनायक या नागेन्द्र धरणेन्द्र-पद्मावती के इष्ट देव के रूप में दृष्टव्य होती हैं। इनमें उत्कृष्ट कलात्मकता दसवीं शताब्दी के बाद ही अधिक प्रखर हुई है। हमेरी (जिला धारवाड़) में मुद्दु माणिक्य वसदि में पार्श्वनाथ की परिकर सहित आसीन मूर्ति स्वयं में अप्रतिम लावण्ययुक्त, भावात्मक, आकर्षक तथा कलात्मक है। यह साढ़े तीन फुट ऊँची पार्श्वनाथ की पद्मासन मूर्ति है, जो छत्रमयी, सात फणों से युक्त, सिर से ऊपर तक चंवरधारियों सहित तथा तीन ओर लताओं से अलंकृत है। नागआकृतिं स्वाभाविकता लिये हुये कलात्मक है। पीछे दोनों ओर दो-दो मोड़ लिये हुये है, सिर पर कन्धे से ऊपर तक फैले फण लावण्यता और यथार्थता की सजीवता को अभिव्यक्त कर रहे हैं।

हासन चिक्कवसदि में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा में नाग अति विशाल रूप में सात वलय (मोड़) लेता हुआ, दायीं ओर पूंछ से आरम्भ होकर सात कुण्डलियों में पूरा घेरने के बाद भी अगल-बगल काफी कुछ दृष्टव्य है, जैसे पीछे मोटा गद्दा ही सर्प का रखा हो। सिर पर सप्तफण कलात्मक रूप में झुके हुये हैं। ध्यानस्थ खड्गासन में मूर्ति अति भव्य वीतरागी, सौम्य, भावात्मक तथा आकर्षक है। इस नाग आकृति की कलात्मकता, मौलिकता और स्वाभाविकता में कल्पना का अद्भुत नमूना है। श्रीमन्ती बाई स्मारक संग्रहालय मंगलोर में संग्रहीत तीर्थंकर पार्श्वनाथ की धातु मूर्ति स्वयं में बड़ी ही कलात्मक तथा आकर्षक है, खड्गासन प्रतिमा में सर्प की पूंछ पीछे लटकी हुई है तथा बड़े ही करीने से सर्प लहरिया मोड़ देता हुआ तीन वलय में पार्श्वनाथ के पीछे सिर पर फैल जाता है तथा सप्तफण नम्रीभूत हो मुकुट का रूप धारण कर लेते हैं। नाग फणमंडित श्री १००८ सहस्रफणी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर दरगा (बीजापुर) की जिन प्रतिमा कलाकार की कल्पना तथा कौशल का अद्भुत भव्य चमत्कार ही कहना चाहिये। यह प्रतिमा काले पाषाण की लगभग पांच फुट अवगाहना की है। एक हजार फणों से सुशोभित यह चैत्य एक अतिशय पूर्ण प्रतिमा

के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी यह भी एक विशेषता है कि सर्पफण में दूध डालने से सभी सहस्र फणों से दूध निकलने लगेगा। यह प्रसिद्ध मूर्ति अति भव्य भावपूर्ण तथा आकर्षक है। सहस्रनाग फणों की कलात्मकता दर्शक को सम्मोहन में डाल देती है, वह दैवीय दिव्यता से आह्लादित हो उठता है। शान्त रस की अप्रतिम प्रतिमा में नाग फण स्वयं में अनूठा हैं। सहस्र फण मानवीय अचेतन मन की सहस्त्रेच्छाओं का प्रतीक है। संभवतः कलाकार ने इसी भाव को अप्रतिम प्रतीक रूप में यहाँ सुशोभित किया है। यह मूर्ति विश्व की अद्वितीय प्रतिमाअें में से एक है।

वसव कल्याण (कल्याणी) में अवस्थित संग्रहालय में अनेक जैन मूर्तियों का संग्रह है। इसमें एक मूर्ति पर नागकुमार और उनकी पत्नी का अंकन है। सम्भवतः यह धरणेन्द्र-पद्मावती की मूर्ति है। नाग कुमार का मुख अति सौम्य, सुन्दर तथा आकर्षक है। वक्ष बलिष्ट तथा पुरुषोचित है। सिर पर सप्तफण मुकुट है। कान, गाल, वक्ष तथा हाथ अलंकारों से सुसज्जित हैं। युवती अति सुन्दर सौम्य तथा मनमोहक है। सिर पर पंच फण मुकुट है तथ वक्ष नारियोचित निरावस्त्र तथा अलंकृत हैं। दोनों ही हस्त मुद्रायें प्रणयरत शालीन हैं, अधोअंग सर्प का है, पंचावृत लिये चमत्कारिक सौन्दर्य को आविर्भूत किये हुये है। यह नाग-युगल ग्यारहवीं शताब्दी का है।

हरफन हल्ली. होस वसदि में कलात्मक नाग प्रतीक स्वयं में अद्वितीय भाव भंगिमा की नागआकृति है। यह एक सुन्दर शोभन के रूप में आलेखित है। नाग आकृति को इस प्रकार से उलझाया-सुलझाया गया है कि वह अनबूझ पहेली बन गयी है। ऊपर सप्त फण को कलात्मकता से बाँधा गया है। यह स्वरूप शिल्प का अद्भुत प्रतीकात्मक आलेखन है।

इस प्रकार.नाग जितना साहित्य में चर्चित रहा है उससे कहीं अधिक जैन कला परम्परा में विशेषतः दृश्य कला में लोकप्रिय भाव भंगिमाओं में अगणित रूपाकृतियाँ लेता रहा है। सम्भवतः जितना गौरवपूर्ण बाहुल्य नागाकृतियों का रहा है उतना गौरव किसी भी पशु-पक्षी या सरीसृप को नहीं मिला। भारत में हजारों जैन मंदिर और लाखों जिन प्रतिमायें हमारे पूर्वजों ने धरोहर के रूप में दी हैं, जो कला व संस्कृति की अमूल्य निधि के रूप में फैली हुई हैं। अब उनका संरक्षण संवर्धन हमारा कार्य है।

- १/३४४, सुहाग नगर, फिरोजाबाद (यू.पी.) - २८३२०३

अनेकान्तवाद और पर्यावरण

- पं. सुनील जैन 'संचय', जैनदर्शनाचार्य

जैनदर्शन का अनेकान्तवाद वास्तव में वैचारिक हिंसा को रोकने के लिए सफल औषधि है। एक ही व्यक्ति में अनेक गुण विद्यमान होते हैं परन्तु यदि हम उसमें एक ही एकांत दृष्टि को लेकर बैठ जायें तो निश्चित ही झगड़ा होगा। जैनदर्शन 'ही' को छोड़ने तथा 'भी' को अपनाने की प्रेरणा देता है। जहां 'ही' है वहां विवाद है और जहां 'भी' है वहां शान्ति है। आज जो घर-घर में वैचारिक पर्यावरण प्रदूषण हो रहा है उसके निवारण का उपाय जैनदर्शन का स्याद्वाद, अनेकान्त है।

जर्मन विद्वान हर्मन जैकोबी का कथन है "स्याद्वाद से तो सत्य विचारों का द्वार खुल जाता है।" **आप्तमीमांसा** में स्याद्वाद की परिभाषा करते हुये आचार्य समन्तभद्र कहते हैं -

स्याद्वादः सर्वथैकान्तव्यागात् किंवृत्तचिद्विवधिः।
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेय विशेषकः।।१०४।।

अर्थात् सर्वथा एकान्त का त्याग करके कथंचित् विधान करने का नाम स्याद्वाद है। वह सात भंगों और नयों की अपेक्षा रखता है तथा हेय और उपादेय भी बतलाता है। स्यात् यानि कथंचित्, वाद यानि कथन। कथंचित् कथन पद्धति का नाम स्याद्वाद है। यदि जैनधर्म की इस विचार दृष्टि को विश्व अपना ले तो वैचारिक मतभेद कोसों दूर भाग जायेगा और वैचारिक पर्यावरण शुद्ध हो जायेगा। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से जैनधर्म पर्यावरण रक्षा के प्रति अत्यधिक सजग है। जैनधर्म केवल भौतिक पर्यावरण की शुद्धि के लिए ही जागरूक व प्रयत्नशील नहीं है बल्कि अन्तः पर्यावरण की विशुद्धि को भी एक अभिन्न अंग मानता है। जब तक आत्म शुद्धि नहीं होगी, अन्तरंग परिणाम शुद्ध नहीं होंगे, तब तक पर्यावरण सुरक्षा संभव नहीं है। पर्यावरण की सच्ची सुरक्षा तभी मानी जावेगी जब भौतिक व आध्यात्मिक पर्यावरण का ध्यान रखा जावे।

हमारी गुमराह और मिथ्यादृष्टि ने सभ्यता के विकास के नाम पर सारे पर्यावरण को तहस-नहस कर दिया है। सम्पूर्ण विश्व विनाश के कगार पर खड़ा है। हम

पर्यावरण के स्वयं एक हिस्सा हैं, यह जानते हुए भी हम पर्यावरण सुरक्षा के प्रति संवेदनशील नहीं होते हैं। आज हमें समय की नजाकत देखते हुए सम्हलना होगा, वरना प्रकृति भी शान्त रहने वाली नहीं है। भूकम्प, तूफान, बाढ़, अग्नि गिरना, सुनामी लहरें आदि आखिर क्या दशा रही हैं फिर भी हम पर्यावरण के प्रति लापरवाही बरत रहे हैं।

हाल ही में २६ दिसम्बर, २००४ को आयी 'सुनामी लहरों' से हमें सबक लेने की जरूरत है जिसमें भारत, श्रीलंका, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, मलेशिया, म्यांमार, मालदीव और बंग्लादेश के लाखों लोगों को जान गवानी पड़ी। अकेले श्रीलंका और इण्डोनेशिया में ढाई लाख से अधिक लोग मर चुके हैं। भारत में तमिलनाडु, केरल, अण्डमान-निकोबार द्वीप, पांडिचेरी, आन्ध्रप्रदेश सबसे अधिक इस त्रासदी से प्रभावित हुए हैं। हजारों जानें गयी, हजारों बिछुड़ गये, जो जीवित बचे हैं वे मौत और जीवन के बीच संघर्ष कर रहे हैं। चारों ओर से उदारता से इस त्रासदी को झेल रहे लोगों के लिए सहायता पहुंची है, जैन समाज भी इसमें आगे रहा है। 'सुनामी लहरों' के बाद तरह-तरह से लोगों के, वैज्ञानिकों के विचार आने लगे, परन्तु जहां दृष्टि होना चाहिए वहां कोई नहीं दृष्टिपात कर रहा है कि आखिर यह 'सुनामी लहरें' क्यों आयीं? शायद जैनदर्शन से सीख लें।

विश्व यदि पर्यावरण विनाश के इस दमघोटू जंजाल से सस्ते में निपटना चाहता है तो उसे जैनधर्म-दर्शन में वर्णित पर्यावरण सुरक्षा की बातों पर गहनता से विचार करना चाहिए। जैनदर्शन में वर्णित प्रत्येक बात पर्यावरण सुरक्षा की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। पर्यावरण है तो हम हैं अन्यथा कुछ भी नहीं है। पर्यावरण संरक्षण संवर्द्धन के प्रति हम सजग और जागरूक रहें। जैनधर्म की पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि विश्व के लिए अमूल्य धरोहर है।

-बी. ३/८०, भदैनी, वाराणसी- २२१००१

जैन धर्म की प्राचीनता के वैदिक प्रमाण

– श्रीमती मीनाक्षी जैन

(जैन साहित्य के साथ-साथ वैदिक एवं अन्य जैनेतर साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने वाली प्रस्तुत लेखिका सम्प्रति जैन अनुशीलन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में शोधकर्त्री हैं। -सम्पादक)

जैन धर्म विश्व का सबसे प्राचीन धर्म है। वह न वैदिक धर्म की शाखा है और न बौद्ध धर्म की। वरन् वह सर्वतः स्वतंत्र धर्म-दर्शन हैं। यह सत्य है कि जैन धर्म शब्द का प्रयोग वेदों में, पिटकों में, और आगमों में देखने को नहीं मिलता है, जिसके कारण तथा कुछ साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह के कारण कितने ही इतिहासकारों ने जैन धर्म को अर्वाचीन मानने की भयंकर भूल की है।

जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से जैन धर्म का अध्ययन करते हैं, तब सूर्य के प्रकाश के समान यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैन धर्म विभिन्न युगों में विभिन्न नामों द्वारा अभिहित होता रहा है। वैदिक काल से आरण्यक काल तक वह 'वातरशन मुनि' या 'वातरशन श्रमणों' के नाम से पहचाना गया है। **ऋग्वेद** में वातरशन मुनि का उल्लेख है-

"मुनयो वातरशनाः पिशंगा वसते मला।"

तैतिरिय अरण्यक में केतु, अरुण और वातरशन ऋषियों की स्तुति की गई है :

केतवो अरूणासश्च ऋषयो वातरशनाः प्रतिष्ठां
शतधा हि समाहिता सो सहस्त्र धाय सम।।

श्रीमद्भागवत के अनुसार भी वातरशन श्रमणों के धर्म का प्रवर्तन भगवान ऋषभदेव ने किया। व्रत्य शब्द भी वातरशन शब्द का सहचारी है। वातरशन मुनि वैदिक परम्परा के नहीं थे क्योंकि प्रारंभ में वैदिक परम्परा में सन्यास और मुनिपद का स्थान नहीं था।

जैन धर्म का दूसरा नाम 'आर्हत' भी अत्यधिक विश्रुत रहा है। जो अर्हत् के उपासक थे वे "आर्हत" कहलाते थे। वे वेद और ब्राह्मणों को नहीं मानते थे। वे यज्ञों में विश्वास न कर कर्म-बंध और कर्म निर्जरा को मानते थे। प्रस्तुत "आर्हत धर्म" को **पद्मपुराण** में सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा है। इस धर्म के प्रवर्तक ऋषभदेव हैं। ऋग्वेद

में अर्हन् को विश्व की रक्षा करने वाला सर्वश्रेष्ठ कहा है। आचार्य श्रुतकेवली भद्रबाहु ने **कल्पसूत्र** में भ. अरिष्टनेमि व अन्य तीर्थंकरों का विशेषण 'अर्हत्' प्रयोग किया है। **पद्मपुराण** एवं **विष्णुपुराण** में जैन धर्म के लिए 'अर्हत धर्म' का प्रयोग मिलता है।

'आर्हत' शब्द का प्रचलन भगवान पार्श्वनाथ के तीर्थकाल तक अधिक रहा। महावीर युगीन साहित्य में मुख्य रूप से 'निर्ग्रंथ' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

दशवैकालिक, उत्तराध्ययन और **सूत्रकृतांग** आदि आगमों में 'जिन शासन', 'जिन मार्ग', 'जिन वचन' शब्दों का प्रयोग हुआ है लेकिन 'जैन धर्म' शब्द का प्रयोग आगम ग्रन्थों में नहीं मिलता। सर्वप्रथम 'जैन' शब्द का प्रयोग जिनभद्र गणी क्षमा श्रमण कृत **विशेषावश्यक भाष्य** में देखने को मिलता है।

उसके पश्चात् के साहित्य में जैन धर्म शब्द का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। **मत्स्य पुराण** तथा **देवी भागवत** में भी जैन धर्म का वर्णन मिलता है।

तात्पर्य यह है कि देशकाल के अनुसार शब्द बदलते रहे हैं, किंतु शब्दों के बदलने मात्र से जैन धर्म को अर्वाचीन नहीं माना जा सकता। परम्परा की दृष्टि से उसका संबंध भगवान ऋषभ्देव से है। इसके अनेक प्रमाण वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं कि वेद पूर्व भी जैन दर्शन विद्यमान रहा है।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में प्रजापति, परमेष्ठी, हिरण्यगर्भ और वातरशन (नग्न) मुनियों का उल्लेख है। इन उपमाओं का उल्लेख ऋषभदेव के संबंध में भी किया गया है। अतः वेद विरुद्ध नियमादि का पालन करने वाले तथा यज्ञ विरोधी नग्न श्रमणों की परम्परा का अस्तित्व ऋग्वेद काल तक जाता है। ये श्रमण ध्यान मग्न रहते थे, कभी-कभी मुक्ति का उपदेश देते थे, जो प्रचलित धर्म के अनुरूप नहीं होता था। वैदिक सभ्यता का मौलिक उद्भव सिन्धु घाटी में हुआ, जबकि श्रमण परम्परा का विकास गंगा की घाटी में हुआ। अतः प्रारंभिक वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख नहीं मिलता। ऋग्वेद का दसवां मण्डल जो गंगा घाटी में रचा गया, उसमें इसका न्यून उल्लेख प्राप्त होता है।

नाभि पुत्र ऋषभ और ऋषभ पुत्र भरत की चर्चा प्रायः सभी हिन्दू पुराणों में आती है। **मार्कण्डेय पुराण** अध्याय ५०, **कूर्म पुराण** अध्याय ४१, **अग्नि पुराण** अध्याय १०, **वायुपुराण** अध्याय ३३, **गरुण पुराण** अध्याय १, **ब्रह्माण्ड पुराण** अध्याय १४, **वराह पुराण** अध्याय ७४, **लिंगपुराण** अध्याय ४७, **विष्णु पुराण** अध्याय २ और **स्कन्द पुराण कुमारखण्ड** अध्याय ३७ में ऋषभदेव का वर्णन आया

है। उन सभी में ऋषभदेव को नाभि और मरुदेवी का पुत्र बताया है। **ऋषभ के सौ** पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से बड़े पुत्र भरत को राज्य देकर ऋषभदेव ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। इस भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। सभी हिन्दू पुराण इसमें एकमत हैं। हिन्दू पुराणों का यह एकमत्य निःसंदेह उल्लेखनीय है।

वेद तथा उपनिषदों में यत्र-तत्र विभिन्न तीर्थंकरों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। **यजुर्वेद** में ऋषभदेव, अजितनाथ, सुपार्श्वनाथ तथा अरिष्टनेमि आदि तीर्थंकरों का उल्लेख मिलता है। यथा-

१. ॐ नमोऽर्हतो ऋषभो।

- **यजुर्वेद**, अध्याय २६

२. ॐ रक्ष-रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा।।
अर्थात् हे अरिष्टनपमि भगवान हमारी रक्षा करौ।

- **यजुर्वेद**, अध्याय २६

३. को सात्तारमिदं वृषभं वदन्ति
नम नारमिद्रं हवे सुगतं,
सुपार्श्वमिद्रमाहूरिति स्वाहाः।

- **यजुर्वेद**

उपर्युक्त मंत्र में सुपार्श्वनाथ को इन्द्र के साथ उपमित करके स्तुति की गई है। इससे जैनं धर्म की प्राचीनता व तीर्थंकर परम्परा का बोध होता है।

४. ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठतानां, चतुर्विंशति तीर्थंकराणां। ऋषभादि वर्द्धमानान्तानां, सिद्धानां शरणं प्रपद्ये।

- **ऋग्वेद** १०/८५/४

५. ॐ पवित्र नग्नमुपवि (ई) प्रसान हे येषां नग्ना (नग्नये) जातिर्येषांवीरा।।
अर्थात् हम लोग पवित्र पाप से बचाने वाले नम्न देवताओं को प्रसन्न करते हैं, जो नग्नं रहते हैं और बलवान हैं।

६. रेवतान्दो जिनो नेमिर्युगादि विमलाचले।
ऋषीणामाश्रमा देव मुक्ति मार्गस्य कारणम्।।

- **महाभारत**

७. मरुदेवि च नाभिश्च भरतेः कुलसत्तमः।
अष्टमों मरुदेव्यां तु नाभे जाति उरू क्रमः।।

दर्शयन वर्त्म वीराणं सुरासुर नमस्कृतः।
नीति त्रितय कर्तायों युगादों प्रथमोजिनः।

– मनुस्मृति

८. पद्मासन समासीनः, श्याममूर्ति दिगम्बरः।
नेमिनाथः सिवोथैव नामचक्रेस्य वामनः।
कलिकाले महाधोरे, सर्वपाप पणाशकः।
दर्शनांत्स्पर्शना देव, कोटियज्ञ फलप्रदः।

– प्रभास पुराण

९. वामनेन रैवते श्रीनेमिनाथाग्रे, बलिबन्धनसामर्थ्याथे-तपस्ते पे।

– वामनावतार

१०. दीर्घायुत्वा युवलायुर्वा शुभ जातायु ॐ रक्ष-रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा।
वामदेव शान्त्यर्थ मनु विद्यीयते सास्माकं अरिष्टनेमि स्वाहाः।

– वृहदारण्यक उपनिषद्

११. ऋषभं पवित्र पुरूहूत घ्वरं यज्ञेषुयज्ञ परम् पवित्रं, श्रुतधरं यज्ञंप्रति प्रधान ऋतुयजन पशुमिंद्र माहवेति स्वाहा।।

१२. ज्ञातारमिन्द्रं ऋषभं वदन्ति अतिचारमिन्द्रं, तमरिष्टनेमि, भवे-भवे, सुभवं सुपार्श्वमिन्द्रं, हवेतुशक्रं अजितं जिनेन्द्र, तद्वर्द्धमानं पुरूहूतमिंद्र स्वाहा।। दधातु दीर्घायुस्तत्वाय बलायवर्चसे, सुप्रजास्तवाय रक्ष-रक्ष रिष्टनेमि स्वाहा।।

– वृहदारण्यक उपनिषद

इस प्रकार वेद, पुराण, उपनिषदों मे अनेक स्थलों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से विभिन्न तीर्थंकरों की स्तुति, महात्म्य विवेचन किया गया है। कहीं-कहीं वेद-विरोधी चरित्रों के रूप में भी इनका वर्णन मिलता है। जैसा कि **ऋग्वेद** में उल्लेख मिलता है, कि ये वातरशन मुनि वैदिक रीति-रिवाजों, यज्ञ-यागादि के विरोधी हैं तथा वेदों को नहीं मानते हैं तथा भिन्न प्रकार के व्रतों का पालन करते हैं जिनसे आर्य अपरिचित हैं। इस आशय के उल्लेख **श्रीमद्भागवत्** में भी मिलते हैं।

ब्राह्मण परम्परा और उसमें भी विशेष रूप से वैष्णव परम्परा का बहुमान्य और सर्वत्र अति प्रसिद्ध ग्रन्थ है **श्रीमद्भागवत्**, जिसे **भागवत् पुराण** भी कहते हैं। इसमें

भगवान ऋषभदेव का जो वर्णन मिलता है, वह बहुत कुछ जैन परम्परा के अनुकूल है। इसमें लिखा है कि-

''जब ब्रह्मा ने देखा, कि मनुष्य की संख्या नहीं बढ़ी तो उसने स्वयंभू मनु और सतरूपा को उत्पन्न किया, उनके प्रियव्रत नाम का लड़का हुआ, प्रियव्रत का पुत्र अग्नींध्र हुआ, अग्नीध्र के घर नाभि का जन्म हुआ। नाभि ने मरूदेवी से विवाह किया और उनसे ऋषभदेव हुए। ऋषभदेव ने इन्द्र के द्वारा दी गई जयन्ति नाम की भार्या से सौ पुत्र उत्पन्न किए और बड़े पुत्र का राज्याभिषेक करके सन्यास ले लिया। उस समय केवल शरीर मात्र उनके पास था और वे दिगम्बर वेश में नग्न विचरण करते थे, मौन रहते थे। कोई डराए, मारे, ऊपर थूंके, पत्थर फेंके, मूत्र-विष्टा फेंके तो इन सबकी ओर ध्यान नहीं देते थे। यह शरीर असत्! पदार्थों का घर है, ऐसा समझकर अहंकार-ममकार का त्याग करके अकेले भ्रमण करते थे। उनका कामदेव के समान सुन्दर शरीर मलिन हो गया था। उनका क्रिया-कर्म बड़ा भयानक हो गया था। शरीरादिक का सुख छोड़कर उन्होंने आजगर व्रत ले लिया था। इस प्रकार कैवल्यपति भगवान ऋषभदेव निरन्तर परम आनन्द का अनुभव करते हुए भ्रमण करते-करते कोंक, बैंक, कुटक दक्षिण कर्नाटक देशों में अपनी इच्छा से पहुंचे और कुटिकाचल पर्वत के उपवन में उन्मत्त के समान नग्न होकर विचरने लगे। जंगल में बांसों की रगड़ से आग लग गई और उन्होंने उसी में प्रवेश करके अपने को भस्म कर दिया।''

श्रीमद्‌भागवत् में कहा है- ''नाभिराजा ने संसार में धर्म वृद्धि के लिए मोक्ष प्राप्ति और अपवर्ग को पथ प्रदर्शन के लिए अपत्यकामना की और अरिहन्त भगवान को अवतरित करने के लिए यज्ञ किया।''

''अर्हन् नाम-रूप प्रकृति के गुणों से निर्लेप, अनासक्त तथा मोह से असंस्पृष्ट होते हैं और मोक्ष तथा अपवर्ग का मार्ग बतलाते हैं।

''ऋषभदेव साक्षात् ईश्वर थे। वे सर्व समता रखते, सर्व प्राणियों से मित्र-भाव रखते और सर्वप्रकार दया करते थे।''

श्रीमद्‌भागवत् ने उच्च स्वर से उद्‌घोषित किया है, कि उस ऋषभदेव भगवान का ज्येष्ठ और श्रेष्ठ गुणी भरत नामक पुत्र था। वह भारत का आदि सम्राट था और उसी के नाम पर इस राष्ट्र का नाम भारतवर्ष पड़ा।

भागवत् में भगवान ऋषभदेव की तपस्या का बहुत ही रोमांचकारी वर्णन किया गया है। उपसर्गों, परिषहों और संकटों को पार करते हुए तथा वनवास के समस्त

दुःखों को सहन करते हुए भगवान् अवधूत वेश में विचरने लगे। उनका मन अविखण्डित और प्रशान्त था। वे मानापमान की चिन्ता न करके घूमते रहते थे।

भगवान् ऋषभदेव के भागवतोक्त जीवन की जैनागमों और जैन पुराणों से पूरी तरह तुलना की जा सकती है। भगवान ऋषभदेव द्वारा अपने पुत्रों को उपदेश देने का प्रसंग अंग शास्त्र में भी है। **सूत्रकृतांग** का द्वितीय अध्ययन (प्रथम श्रुतस्कंध) इसी उपदेश से भरा है। वस्तुतः भागवतकार ने श्री ऋषभदेव के जीवन और धर्म को विशुद्ध रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। कहीं भी उन्हें यज्ञ-समर्थक या वेदानुयायी प्रदर्शित नहीं किया गया है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य के द्वारा यह सिद्ध हो जाता है, कि जैन धर्म वैदिक धर्म से सर्वथा पृथक् है तथा उससे बहुत पहले से ही अस्तित्वगत है। जैन दर्शन वैदिक मान्यताओं से प्रभावित नहीं है वरन् उनके सिद्धान्त पहले से ही निश्चित हैं। इसके विपरीत वैदिक दर्शन पर जैन सिद्धान्तों का कुछ प्रभाव अवश्य दिखायी पड़ता है।

- द्वारा श्री नरेन्द्र जैन

२०२, वीर दुर्गादास नगर, पाली-३०६४०१ (राजस्थान)

समस्त भारत के दिगम्बर जैन मंदिर उनके अध्यक्ष एवं मंत्री कृपया ध्यान दें

महावीर ट्रस्ट, म.प्र. एवं दिगम्बर जैन सोशल ग्रुप फेडरेशन द्वारा समस्त भारत के दिगम्बर जैन मंदिरों, चैत्यालयों के नाम, पते, पिनकोड, तहसील, जिला, राज्य, फोन नम्बर तथा उनके व्यवस्थापकों, अध्यक्ष, मंत्रियों के पूरे नाम, पते घर के पोस्टल एड्रेस, पिनकोड, फोन नम्बर की एक राष्ट्रीय डायरेक्ट्री अतिशीघ्र प्रकाशित किये जाने की योजना है। काफी कुछ सूची बन भी गयी है, फिर भी किसी मंदिर एवं उसके अध्यक्ष, मंत्री के नाम, पते छूट ना जायें तथा उनका नाम राष्ट्रीय डायरेक्ट्री में मुद्रित होने से रह न जायें इसलिए अतिशीघ्र अपने मंदिर का नाम उसका पूरा पता (शहर, तहसील, पिनकोड, जिला, राज्य एवं एस.टी.डी. कोड, फोन नम्बर) तथा ऐसी ही जानकारी उनके अध्यक्ष एवं मंत्री की भी इस पते पर भिजवाने की कृपा करें- महावीर ट्रस्ट कार्यालय, ६३/३ एम.जी. रोड, महावीर एम्पायर, इन्दौर म.प्र. -४५२००१।

प्राकृत काव्यों में मुक्तक का स्थान

- श्री रजनीश शुक्ल

(लेखक मोहनलाल सुखाड़िया वि. वि. उदयपुर में वि. वि. अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त वरिष्ठ शोध छात्रवृत्ति अवार्ड प्राप्त शोध-छात्र हैं। उनके शोध-प्रबन्ध का विषय है "पालि-प्राकृत मुक्तक साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन" - सम्पादक)

मुक्तक का अर्थ एवं परिभाषा

मुक्तक का अर्थ व्युत्पत्तिलभ्य है- 'मुच्यते स्मेति मुक्तम्, मुक्तम् ह्रस्वं द्रव्यं मुक्तम्'- अर्थात् मुक्तक उस द्रंव्य का नाम है जो मुक्त हो और जिसका कलेवर छोटा हो। 'मुच्' धातु में निष्ठार्थक 'क्त' प्रत्यय का, जो भूतकाल में कर्म कारक में होता है और फलाश्रय के समानाधिकरण विशेषण का बोध कराता है, योग करने से 'मुक्त' शब्द बना, उसे संज्ञार्थक बनाने के लिए उसमें 'कन्' प्रत्यय (पा. सू. ५-३-८७) जोड़ने से 'मुक्तक' शब्द की निष्पत्ति हुई।

काव्यादर्श के प्राचीन टीकाकार तरुण वाचस्पति ने अपनी टीका में मुक्तक का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है- "मुक्तक एक ऐसा सुभाषित होता है, जो इतर की अपेक्षा नहीं रखता।" ऋषिश्वरनाथ भट्ट के **आधुनिक संस्कृत-हिन्दी कोश** में मुक्तक का अर्थ फुटकर कविता दिया गया है। और वी. एस. आप्टे के **संस्कृत-हिन्दी कोश** के अनुसार मुक्तक का अर्थ यह है कि एक प्रथकृत श्लोक जिसका अर्थ स्वयं अपने में पूर्ण हो। **काव्य के रूप** में बाबू गुलाब राय ने मुक्तक की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "मुक्तक काव्य तारम्तम्य के बंधन से मुक्त होने के कारण 'मुक्तेन मुक्तकम्' कहलाता है और उसका प्रत्येक पद स्वतः पूर्ण होता है।" **अग्निपुराण** का यह कथन दण्डि के कथन से अधिक स्पष्ट है-

'मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्। (३३७-३६)

अर्थात् मुक्तक एक ही श्लोक को कहते हैं जो सहृदयों के हृदय में चमत्कार का संचार कराने में सक्षम हो।

मुक्तक अर्थ सिद्धि का एक प्रमुख काव्य है जिसमें प्रबन्ध होता है, विशेषता भी होती है, कथन एवं अभिव्यक्ति भी समाहित होती है परन्तु वह निर्व्यूह होता है जिसका अर्थ यह है कि समस्त विशेषताएं होते हुए भी स्वतः अर्थ का पर्यवसान इसके पद्य की विशेषता है।

मुक्तक के सम्बन्ध में सम्पूर्ण मतों का विमर्श करके यह परिभाषा बनाई जा सकती है- ''मुक्तक पूर्व और पर्व से निरपेक्ष, मार्मिक, खण्ड, दृश्य अथवा संवेदना को उपस्थित करने वाली वह रचना है जिसमें निरन्तर कथा प्रवाह नहीं होता, जिसका प्रभाव सूक्ष्म अधिक, व्यापक कम होता है तथा जो स्वयं पूर्ण, अर्थ सम्पन्न, अपेक्षाकृत लघु रचना होती है।

मुक्तक का विकास

स्वतंत्र कथन करने की शैली प्रारम्भ से रही है। लेखन युग की दृष्टि से इस पर विचार करते हैं तो स्वतन्त्र कथन का रहस्य वैदिक ऋचाओं एवं पालि-प्राकृत के सूत्र ग्रन्थों में विशेष रूप से देखने को मिलता है। प्राकृत की आर्ष परम्परा में शौरसेनी और अर्द्धमागधी भाषा के वचन-व्यवहार महावीर-वचन के रूप में स्थान लेते गए और मगध के विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त मागधी के मूल परिवेश में बुद्ध-वचन ने अपना स्वरूप स्थापित किया जिसे क्षेत्रीय दृष्टि से पालि कहा गया।

मुक्तक काव्य संकलन

मुक्तक एक ऐसी मुक्ता मणि है जिसे शतकों, सप्तशतकों या सहस्रकों की छोटी-बड़ी पिटारी में संग्रह किया जाए अथवा किसी प्रबन्ध के कथा प्रवाही सूत्र में गूंथा जाए, वह सर्वत्र अपनी उज्ज्वल आन और गर्वीली स्वच्छता से सहृदयों का रंजन करने में सक्षम होती है। राजशेखर की उक्ति 'मुक्तके कवयोऽनंता' इस बात का सूचक है कि अनेक कवि काव्य गोष्ठियों में सम्मान एवं यश प्राप्त करने के लिए मुक्तक रचना का ही आश्रय लेते रहे।

मुक्तक काव्य परम्परा

इस परम्परा का मूल हमें **ऋग्वेद** में प्राप्त होता है जो मानव सभ्यता की प्राचीनतम पुस्तक है, **ऋग्वेद** किसी काल की रचना नहीं है, अपितु अनेक शताब्दियों से बिखरी हुई एक विस्तृत साहित्य राशि का संकलन मात्र है।

आगम के सूत्र

शौरसैनी और अर्धमागधी ये दो भाषाएं जन प्रचलित हुई इनका व्यापक साहित्य सामने आया और पालि साहित्य ने भी अपना स्थान निर्धारित किया। इनके मूल में सर्वत्र ही मुक्तक का उपक्रम है। जिसे चितवन, स्थिति या स्त्रोत के रूप में जानते हैं और पहचानते भी हैं, परन्तु मैंने आगम के अध्ययन में प्रवेश करते ही यह अनुभव किया कि आगम के जितने भी सूत्र हैं वे परापेक्षी नहीं हैं। प्राकृत की गाथाओं में प्रायः

काव्यगत विशेषताएं भी समाहित हैं। उनके कुछ प्रसंगों को छोड़ दिया जाए तो अर्थ पर्यवसान के लिए उनमें किसी तरह दूसरे की आवश्यकता नहीं है। **आचारांगसूत्र**, **सूत्रकृतांग** आदि तथा अन्य अंग एवं उपांग ग्रन्थ, **उत्तराध्ययन** जैसें मूलसूत्र तथा शौरसेनी आगम के प्रसिद्ध **षटखण्डागम**, **धवलाटीका**, **जयधवलाटीका**, **महाबन्ध**, **कसायपाहुड**, **प्रवचनसार**, **समयसार**, **नियमसार**, **कार्तिकेयानुप्रेक्षा**, **मूलाचार**, **भगवती आराधना**, **योगसार**, **परमात्म प्रकाश**, **पाहुडदोहा** आदि प्राकृत कवियों की मुक्तक रचनाएं प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से भी प्राकृत के मुक्तक काव्यों में **गाहासत्तसई**, **वज्जालग्गं**, **विषमबाणलीला**, **वैराग्य रसायन**, **धम्मथुदि**, **अरिहन्त अष्टवन** आदि प्राकृत के मुक्तक काव्य के रूप में प्रसिद्ध हैं।

आगमिक काव्य

अंग, उपांग, छेदसूत्र, मूलसूत्र, **षटखण्डागम**, **धवला**, **जयधवलाटीका** आदि अनेक आगम ग्रंथ हैं जिनमें परापेक्ष भावों से युक्त अलग-अलग विषयों का प्रयोग भी हुआ है। **आचारांग** प्रथम एवं द्वितीय दोनों ही खण्डों में मुक्त गद्य या पद्य प्रयुक्त हुए हैं। द्वितीय **श्रुतस्कन्ध** में महावीर के चरित्र को निम्न रूप में व्यक्त किया गया है।

पडिवज्जित्तु चरितो अहोणिसं सव्वपाण भूतहितं।
साहट्टढलामपुलया पयता देवा णिसामयंति।।

सूत्रकृतांग के प्रथम एवं द्वितीय दोनों श्रुतस्कन्धों में अनेक काव्यमय बंध मुक्तक के स्वरूप को लिए हुए हैं। यह दर्शन का सूत्र ग्रंथ होते हुए भी मुनिधर्म, लोकवाद, अहिंसा, चारित्र् शुद्धि, मदत्याग, अभिकरण विवर्चना, समाधि, समिति आदि अनेक विविध विषयों का विवेचन भी इसमें सूत्रात्मक प्रयोग के साथ किया गया है-

जहा विहंगमा पिंगा थिमित्तं भुंजति दगं।
एवं विण्णवणित्थेसुदोसो तत्थ कुतो सिवा।।

प्रश्न में वस्तुस्थिति का समावेश है, जैसे पिंगा नामक पक्षिणि बिन हिलाए पानी पी लेती है वैसे ही काम सेवन के लिए प्रार्थना क्या दोष है ? अर्थात् अवश्य है। कुतर्क के रूप में तर्क प्रधान शैली में इस बात का कथन किया है।

इस प्रकार प्राकृत भाषा में मुक्तक काव्यों की परम्परा धर्म एवं सिद्धान्त के आधार पर प्रारम्भ हुई और ऐहिकता का समावेश हो जाने पर श्रृंगार का विभिन्न रूपों में विकास हुआ है। अतः प्राकृत में मुक्तक काव्यों की परम्परा बहुत ही

व्यवस्थित और वैदुष्यपूर्ण है। इसमें एक ओर धर्मतत्व है तो दूसरी ओर श्रृंगार तत्व। कतिपय मुक्तक काव्यों का विवेचन निम्न प्रकार है-

गाहासत्तसई

ईसवी की प्रथम शताब्दी में महाकवि हाल सातवाहन द्वारा रचित असंख्य गाथाओं में से केवल सात सौ चुनी हुई अलंकारपूर्ण गाथाओं का यह संकलन है। इसका उल्लेख स्वयं कवि हाल ने अपनी रचना के तृतीय पद्य में ही किया है। **गाथासप्तशती** एक प्रकार का रसमुक्तक काव्य है जो सहृदयों में चमत्कार का संचार करने में पूर्ण समर्थ है। इसमें रमणीय दृश्यों एवं परिस्थितियों का चित्रात्मक और भावपूर्ण वर्णन किया गया है। इस मुक्तक काव्य में सर्वश्रेष्ठ कवि और कवियित्रियों की चुनी हुई लगभग सात सौ गाथाओं का संकलन है। पहले इसे **गाहाकोष** कहा जाता था। महाकवि बाणभट ने अपने **हर्षचरित्र** में इसका इसी नाम से उल्लेख किया है।

उक्त काव्य का प्रत्येक पद्य अपने आप में स्वतंत्र और आमुष्मिकता की चिन्ता से बिल्कुल मुक्त है। इस काव्य में लोक जीवन के विविध पटलों की सजीव अभिव्यक्ति हुई है। गाथाओं के दृश्य अधिकतर सरल ग्राम्य जीवन से लिए गये हैं। वहाँ के लोग नगर की विलास सामग्रियों से भले ही वंचित हों, पर प्रेम, दया, सहृदयता, एकनिष्ठता जैसे भावों के धनी हैं। गाथाओं में तत्कालीन सामाजिक प्रथाओं का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। श्रृंगार के अतिरिक्त इसमें प्रकृति चित्रण एवं नीति विषयक सूक्तियां भी पायी जाती हैं।

गाथा सप्तशती में नीति तथा सुभाषित एवं लोकभाषा में प्रचलित पद्य भी रचे गये हैं। अनेक नीतिपरक सुभाषित जीवन की व्यवहार-शिक्षा के लिए आदर्श हैं। नीति का अर्थ है "लोक व्यवहार का विधिनिषेधपरक ज्ञान"। काव्य में नीति का प्रयोग काव्य के 'व्यवहार ज्ञान और कान्तासम्मिति उपदेश' के प्रयोजन की सिद्धि का वाहक होता है। विन्टरनित्ज का कथन है कि "नीति सुभाषितों में भारतीयों ने जो दक्षता प्राप्त की है, वह किसी अन्य देश को नहीं मिल सकी है।"

वज्जालग्गं

महाकवि हाल की **गाहासत्तसई** के समान ही जयवल्लभ मुनि द्वारा सातवीं-आठवीं शताब्दी में रचित **वज्जालग्गं** भी एक मुक्तक काव्य संग्रह है। इसमें विषय की विविधता है। इस ग्रन्थ में कुल ७९५ गाथाएं हैं जो कि ९६ वज्जाओं में विभक्त हैं।

वज्जा का अर्थ स्वयं कवि ने पद्धति के रूप में बताया है। अतएव इस मुक्तक संग्रह के एक अधिकार में केवल एक विषय का ही प्रतिपादन किया गया है। इसके विषय क्रम हैं- श्रोतृ, गाथा, काव्य, सज्जन, दुर्जन, मित्र, स्नेह, नीति, धीर, साहस, दैव, विधि, दीन, पूर्वकृतकर्म, वेश्या, समुद्रनिन्दा, सुवर्ण आदि इन अनेक अधिकारों का वर्णन सीमित पद्यों के माध्यम से किया गया है। सज्जनवज्जा के प्रारम्भ में कवि आश्चर्य प्रकट करता है कि समुद्र मन्थन से चन्द्रमा, कल्पवृक्ष और लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई है, पर इससे भी बढ़कर सुन्दर और सुखद सज्जन की उत्पत्ति कहाँ से हुई, यह कहा नहीं जा सकता। संस्कृत साहित्य में भी सज्जनों के स्वभाव और गुणों की प्रशंसा की गयी है पर इतना उत्कृष्ट और स्वच्छ निरूपण किसी भी कवि ने नहीं किया है जैसा कि **वज्जालग्गं** में किया गया है।

इसी प्रकार से **विषमबाणलीला** नामक मुक्तक काव्य भी प्राप्त होता है। इसमें प्रायः प्रकृति-चित्रण है। **प्राकृत पुष्करिणी** नामक ग्रन्थ में भी प्राकृत के विभिन्न कवियों द्वारा अलग-अलग समय में रचित मुक्तक पदों का संग्रह है। इसमें भी अनेक विषयों की विविधता का निदर्शन प्राप्त होता है।

प्राकृत के रसेतर मुक्तक काव्य भी प्राप्त होते हैं जिनमें नैतिक और आचारमूलक गौरवमय जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से शरीर की क्षणभंगुरता, सत्यभाषण, शम, दम, विवेक, विद्वत्ता, विद्या का महत्त्व, मनस्विता, तेजस्विता, धर्म, भक्ति, विनय, क्षमा, दया, उदारता, शील, संतोष प्रभृति गुणों की उपादेयता पर प्रकाश डालने के साथ-साथ आत्मोत्थान के निमित्त गुणस्थान जैसे जीवनमार्गों का भी विवेचन किया गया है। इन काव्यों में काम, क्रोध, लोभ, मोह, छल, कपट, अहंकार, कार्पण्य की भर्त्सना और उनके दोषों का कथन भी किया गया है। **वैराग्य रसायन**, **वैराग्य शतक**, **धम्मरसायण**, **ऋषभपंचाशिका**, जैसे अनेक मुक्तक काव्यों में इनका स्वरूप देखने को मिलता है।

- द्वारा श्री वी. के. शर्मा
अम्बिकाधाम, ६, डाउन स्ट्रीट,
धूलकोटा चौराया, पहाड़ा रोड,
उदयपुर-३१३००१ (राजस्थान)

इतिहास–मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

इतिहास का निर्माण मनुष्य ने किया और मनुष्य को निर्माण की दिशा इतिहास ने दी। अतीत का निष्पक्ष लेखा-जोखा वर्तमान को संवारने में सहायक हो सकता है बशर्ते उससे हम सबक लेना चाहें। इतिहास की उपयोगिता में आस्था रखने वाले डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भारत के इतिहास का गहन अध्ययन-मनन कर **'भारतीय इतिहास : एक दृष्टि'** कृति का प्रणयन किया था। उसमें प्राचीनतम काल से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति पर्यन्त सम्पूर्ण भारत के इतिहास का क्रमबद्ध विहंगावलोकन ऐतिह्य साधनों के आधार पर किया गया। पूर्व में लिखे गये इतिहास-ग्रन्थों में जिन तथ्यों, प्रदेशों आदि की उपेक्षा होती रही, उन्हें भी सम्यक् एवं संतुलित स्थान दिया गया। इस लोकप्रिय इतिहास के 'भारतीय ज्ञानपीठ' से तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

मेरठ में ६ फरवरी, १९१२ ई. को मध्यमवर्गीय अग्रवाल दिगम्बर जैन परिवार में उनका जन्म हुआ था। पिताजी श्री पारसदास सरकारी सेवा में थे। ज्योति प्रसाद की एम.ए., एल-एल.बी. तक की शिक्षा मेरठ और आगरा में हुई। सन् १९३६ ई. में कालेज छोड़ने पर वकालत, शिक्षणकार्य, काँच उद्योग, औषधि व्यापार और राजकीय सेवा आदि को आजीविका हेतु अपनाया। अन्ततः जिला गज़ेटियर विभाग, उ.प्र., लखनऊ में संकलन अधिकारी एवं उप संपादक के पद से वह ससम्मान सेवानिवृत्त हुए।

आजीविका उनके अध्ययन- अध्यवसाय में कभी बाधक नहीं रही। विद्या व्यसनी ज्योति प्रसाद ने सन् १९५६ ई. में आगरा विश्वविद्यालय से प्राचीन भारतीय इतिहास के जैन स्रोतों पर की गई शोध पर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की थी। उनका सर्वप्रथम लेख सूरत से प्रकाशित साप्ताहिक 'जैन मित्र' में अक्टूबर १९३२ ई. में प्रकाशित हुआ था। तदनन्तर इतिहास, संस्कृति, पुरातत्त्व-कला, भाषा-साहित्य, धर्म-दर्शन, सामाजिक एवं सामयिक विषयों पर हिन्दी और अंग्रेजी में उनकी लेखनी से प्रसूत दो हजार से भी अधिक लेख व अन्य रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाश में आयीं और हिन्दी व अंग्रेजी में रचित छोटी-बड़ी लगभग पचास पुस्तकें उनका कृतित्व बनीं। उपर्युक्त इतिहास-ग्रन्थ और शोध-प्रबन्ध के अतिरिक्त **'हस्तिनापुर'**, **'आदितीर्थ अयोध्या'**, **'प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएं'**, **'प्रकाशित जैन साहित्य'**, **'रिलीजन एण्ड कल्चर ऑफ दि जैन्स'** तथा **'युग-युग में जैन धर्म'** उनकी

बहुचर्चित कृतियां रहीं। **'भगवान महावीर स्मृति-ग्रन्थ'** के सुसम्पादन, अनेक विद्वान् मनीषियों की कृतियों पर सारगर्भित प्राक्कथन लेखन, लगभग एक सहस्र पुस्तकों की समीक्षा तथा अनेक शोधार्थियों का मार्गदर्शन करने का श्रेय उन्हें रहा। वह अनेक पत्र- पत्रिकाओं के मानद संपादक भी रहे और **'जैन संदेश-शोधांक'** एवं **'शोधादर्श'** नामक शोध पत्रिकाओं को उन्होंने जन्म दिया।

भारतीय ज्ञानपीठ तथा अन्य विभिन्न स्थानीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर की विविध सांस्कृतिक- सामाजिक संस्थाओं और प्रवृत्तियों से वह जुड़े रहे। स्वान्तः सुखाय साहित्य-साधना में सतत रत अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध इन मनीषी की विद्वत्ता का सार्वजनिक अभिनन्दन कर जनवरी १९७४ ई. में मेरठ में **'विद्यावारिधि'** तथा फरवरी १९७९ ई. में लखनऊ में **'इतिहास- मनीषी'** की उपाधि से उन्हें अलंकृत किया गया और दिसम्बर १९८६ में दिल्ली में 'अहिंसा इन्टरनेशनल' द्वारा सम्मानित किया गया।

सादा- सरल-संतोषयुक्त जीवन जीकर ७६ वर्ष की वय में बहुमुखी प्रतिभा के धनी ज्योति प्रसाद जी ने ११ जून, १९८८ ई. को लखनऊ में, भरापूरा परिवार छोड़ महाप्रयाण किया और स्वयं इतिहास बन गये। उनके इतिहास के चिन्तन का यह दीप-वाक्य कि- ''इतिहास ज्ञान के बिना यदि जातीय जीवन में चेतना, स्फूर्ति स्वाभिमान और आशा का तिरोभाव हो जाता है, तो इतिहास का सम्यक्ज्ञान सोतों को जगा देता है'- इतिहास के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं के लिये सदैव प्रेरणादायी रहेगा। उनकी जन्म जयन्ती पर उनकी स्मृति को सादर नमन् है।

- रमा कान्त जैन

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६००४

चन्द्रप्रभ- स्तवन

स पातु यस्य स्फटिकोपलप्रभे प्रभाविताने विनिमग्नमूर्ति भिः।
विदिद्युते दुग्धपयोधिमध्यगैरिवामरैर्वः शशिलाछनो जिनः।।२।।

- वीरनन्दि प्रणीतं चन्द्रप्रभचरितम् प्रथम सर्ग

भावार्थ- चन्द्र-चिन्ह से विभूषित अष्टम तीर्थंकर भगवान चन्द्रप्रभ तुम सबकी रक्षा करें। उनके देह की कान्ति स्फटिक मणि की प्रभा जैसी धवल थी। अतः चतुर्दिक बैठे देव उस कान्ति में निमग्न होकर ऐसे सुशोभित होते थे मानो क्षीरसागर में डुबकी लगा रहे हों।

कैलाशभूषण जिंदल–एक समर्पित व्यक्तित्व

– श्रीमती सुधा जिंदल

(स्व. श्री कैलाशभूषण जिन्दल की पुत्रवधु श्रीमती सुधा जिन्दल, एडवोकेट, जो एक सुलेखिका और आकाशवाणी व दूरदर्शन के लखनऊ केन्द्रों पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रायोजिका हैं, की लेखनी से प्रसूत प्रस्तुत संस्मरणात्मक आलेख श्री जिन्दल की ८६वीं जन्म जयन्ती एवं प्रथम पुण्यतिथि पर पुण्यस्मरण स्वरूप प्रस्तुत है। – रमा कान्त जैन)

स्वर्गीय श्री कैलाशभूषण जिंदल का जन्म ८ मार्च, १६१७ ई. को लखनऊ में हुआ था। धर्म में निष्ठा और साहित्य में अभिरुचि उन्हें अपने पिता पंडित अजित प्रसाद जी से प्राप्त हुयी थी। अगर आज उनके जीवन वृत्त को, उनकी उपलब्धियों को ध्यान से देखा जाये तो हम पायेंगे कि वह एक सार्थक व्यक्तित्व थे जिन्होंने सामाजिक दायित्वों को बखूबी निभाया। माँ सरस्वती का उन पर वरदहस्त था। उन्होंने अपनी लेखनी को कभी विश्राम नहीं दिया। आज तक उनकी १४ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मुझे याद है जैसे ही चाय का प्याला खाली हो जाता वह उठकर खड़े हो जाते और कहते "मुझे बहुत काम करना है।" हर समय उनकी पैनी दृष्टि अपनी सामाजिक परिस्थितियों पर टिकी रहती। कब उन्हें किस बात का विरोध करना है वह अच्छी तरह जानते थे। 'दैनिक जागरण' में १ मई, २००० ई. को उन्होंने प्रधानमंत्री के नाम खुला पत्र लिखा था जिसमें उनके अंग्रेजी में बोले गये भाषणों का विरोध किया गया था। 'पायनियर' के १४ अक्टूबर, २००० ई. के अंक में उन्होंने "उत्तर प्रदेश के महाराजा" शीर्षक से विधानसभा के विधायकों पर कटाक्ष किया था। उनकी लेखनी से निरन्तर समसामायिक विषयों पर सम्पादक के नाम खुले पत्र छपते रहते थे जिनकी संख्या लगभग १००० तक पहुँच गयी होगी।

श्री कैलाशभूषण जिंदल बचपन से ही मेधावी छात्र थे। लखनऊ विश्वविद्यालय के वह गोल्ड मेडलिस्ट रहे। अंग्रेजी व हिंदी दोनों ही भाषाओं पर उन्हें अधिकार था। इनकमटैक्स विभाग से अपीलीय सहायक आयुक्त के पद से उन्होंने १६७२ में अवकाश प्राप्त किया था। उसके बाद उन्होंने अंग्रेजी भाषा में हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा। यह पुस्तक विदेशों के पुस्तकालयों में देखी जा सकती है। अवकाश प्राप्त करने के बाद उन्होंने जीविकोपार्जन के लिये इलाहाबाद हाईकोर्ट की लखनऊ पीठ में वकालत शुरू कर दी। १६८६ ई. में कुछ ऐसी स्थितियां बनीं जब लखनऊ विधानसभा ने उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा एक अधिनियम पारित कर दे दिया

था। यही वह घटना थी जिसने श्री जिंदल के जीवन की धारा को एक नया मोड़ दिया। (स्व.) श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने श्री जिंदल को बुलाकर इस अधिनियम को हाईकोर्ट में चुनौती देने का कार्य सौंपा। इस प्रकार उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा हाईकोर्ट में इस अधिनियम के विरोध में एक याचिका दायर की गई, पर हाईकोर्ट में इस याचिका को पूर्ण समर्थन न मिल सका। आज भी सम्मेलन द्वारा हाईकोर्ट के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में एक सिविल अपील याचिका विचाराधीन है।

इस प्रकार हिंदी के मान-सम्मान के लिये श्री जिंदल मृत्युपर्यंत लड़ते रहे। सन् १९९८ ई. में श्री जिंदल को उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन का प्रधानमंत्री मनोनीत किया गया। उनके मार्गदर्शन में छह अधिवेशन क्रमशः मेरठ, सीतापुर, उरई, उन्नाव, फर्रुखाबाद, जागीर (मैनपुरी) में आयोजित हुये। हाईकोर्ट के अधिवक्ता होते हुये भी वह अधिवेशन में पारित प्रस्तावों के क्रियान्वयन के लिये विभिन्न सरकारी मंत्रियों और सचिवों से पत्राचार करते रहते थे। कार्य करने का उनमें उत्साह था और वह उसे सम्पूर्णता तक ले जाना चाहते थे।

उत्तर प्रदेश जनपद हिंदी साहित्य सम्मेलन भी उन्हीं की देखरेख में चलता था। स्कूल व कालेजों के विद्यार्थियों को आमंत्रित कर वह विभिन्न प्रतियोगितायें आयोजित करते थे। हिंदी के प्रसार का यह एक अच्छा माध्यम था।

उनकी लेखनी से जैन ग्रंथों व स्तोत्रों का अंग्रेजी अनुवाद उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है। **रामचरित मानस** की टीका व मानस की लोकोक्तियों पर भी उनकी टीका व टिप्पणियाँ उनके शोध की परिचायक हैं।

वकालत के पेशे को उन्होंने अति व्यावसायिक ढंग से नहीं लिया था। बिना प्रतिफल की अपेक्षा किये उन्होंने विभिन्न सामाजिक विषयों पर लोकहित याचिकायें दायर की। यह बात उनके सामाजिक दायित्व के प्रति जागरुकता व उदार चरित्र को दर्शाती है।

वास्तव में श्री जिंदल में अपने उद्देश्य के प्रति लगन, निष्ठा व तत्परता थी। जिस भी कार्य को वह हाथ में लेते उसे वंह बड़े मनोयोग से करते थे। ऐसे उदार चरित्र वास्तव में अनुकरणीय हैं व सदैव रहेंगे।

जिन्होंने जीवन से बहुत कम लिया पर बहुत कुछ दिया ऐसे समर्पित मनीषी श्री कैलाश भूषण जिन्दल का स्वर्गवास लखनऊ में अपने निवास अजिताश्रम, गणेशगंज में २९ जनवरी, २००४ ई. को हो गया था। अब उनकी प्रेरणादायी स्मृति ही हमारी धरोहर है।

- अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ

धर्म को सत्य पर कसिये

– महात्मा भगवानदीन

आगम को ही लोगों ने धर्म मान रखा है, पर आगम तो अप्रमाण है। इसलिए आगम-नामधारी धर्म अप्रमाण हुआ। धर्म और आगम का जो अंश अटल सत्य या सबके माने-जाने सत्य को लिये है, उसके लिए न आगम की जरूरत है, न धर्म की। उतना धर्म तो आदमी के साथ एकमेक हो गया, उसके लिये उसे किसी आगम की जरूरत नहीं और फिर गहराई से सोचने पर धर्म अपने-आप कहीं खड़ा ही नहीं रह सकता। किताबों में तो वह किसी भी तरह नहीं रह सकता। यह मनुष्य में ही रह सकता है। इसलिए भी धर्म-ग्रन्थ गैरजरूरी हो जाते हैं। आग-पानी की तरह धर्म-ग्रंथों का जो अपना धर्म है, वह उनके अपने काम का है, हमारे किसी काम का नहीं। जितना हमारे काम का है, उतने से फायदा उठाने में समाज को कोई हानि नहीं। समाज को हानि तो तभी पहुँचती है, जब धर्म-ग्रन्थों को बुद्धि और तर्क से बड़ा मानकर सहारा लिया जाता है। जब और जहां बुद्धि और तर्क को ढीला किया कि व्यक्ति और समाज को हानि हुई। प्रचलित धर्म और सत्य में यही अन्तर है कि धर्म आज की तारीख तक की बात नहीं कहता और सत्य आज तक की बात कहता है। इसलिए धर्म को सत्य और परीक्षा की कसौटी पर कसे जाने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए।

('सत्य और जीवन' से साभार उद्धृत)

मुक्तक

विश्वधारा में विवस बहना नहीं है काम मेरा।
स्वयं पथ अपना बनाता चल रहा जलयान मेरा।।१।।

मिल जाये अपनापन मेरा, यही चाह है मेरी।
अपनेपन तक जो पहुंचा दे, वही राह है मेरी।।२।।

सुख खोजा, सुख खो गया, कोई नहीं उपाय।
बलिहारी उस दुख की, सुख से दिया मिलाय।।३।।

मानव क्या है और नहीं क्या, कह सकना आसान नहीं है।
कुसुम तुल्य मृदु कोमल, पर उससे कठोर पाषाण नहीं है।।४।।

मन की गुत्थी नहीं सुलझती, मानव सुलझाता है।
अपने ही अन्तस् सागर की, थाह नहीं वह पाता है।।५।।

– डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत'

डी- ४/६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ – ४

दिगम्बरत्व की मर्यादा

– महात्मा गांधी

[दिगम्बरत्व की मर्यादा के सम्बन्ध में ३१ मई, १९३१ के 'नवजीवन' में व्यक्त राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के निम्न विचार, जो हमें प्रबुद्ध चिन्तक लेखक श्री जमनालाल जैन (सारनाथ) के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामयिक और समीचीन प्रतीत होते हैं। –. संम्पादक]

मैं मानता हूँ कि मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर की है, परन्तु आदर्श मनुष्य सर्वथा निर्दोष होता है, विकारशून्य होता है। ऐसी निर्दोषता के बिना यदि कोई व्यक्ति नंगा घूमता है, तो वह दोषी माना जायेगा।

दिगम्बर साधु, यदि निर्विकार हों, तो भी समाज की मर्यादा की रक्षा करना उनका धर्म है। दिगम्बर साधु को शहरों में जाने की आवश्यकता नहीं। यदि आवश्यकता हो तो कम-से-कम शहर की मर्यादा की रक्षा उसे करनी चाहिए। ऐसा 'न करके यदि वे नग्नावस्था में शहर में प्रवेश करने का आग्रह करें, अन्यथा श्रावक ऐसी जिद करें, तो मेरी दृष्टि से वह अधर्म होगा। स्वयं मुझे नग्नावस्था प्रिय है। यदि मैं निर्जन में रहता होऊँ तो नग्नावस्था में ही रहूँ; परन्तु इस विकारमय जगत में नग्नावस्था के सामान्य आचरण हो जाने की सम्भावना कम है। नीति बनाये रखने के लिए किसी भी महापुरुष के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने गुप्तांगों को ढके रहे। यह उसका धर्म है। धर्म को जानने और उसकी रक्षा करने वाला यह विचार नहीं करता है कि 'यह मेरा अधिकार है'। वह तो सोचता है कि 'यह मेरा कर्तव्य है'। ऐसा सोचनेवाले का नग्न रहना कर्तव्य नहीं हो सकता। कर्तव्य अपरिग्रह का है। अपरिग्रह मानसिक धर्म है। जो साधु सामाजिक कर्तव्य-पालन के लिए लंगोटी का भार वहन करता है, वह परिग्रही नहीं, बल्कि संयमी है। जो साधु सामाजिक लज्जा की परवाह किये बिना नग्न विचरण करने का आग्रह करता है, वह स्वेच्छाचारी है। साधु ऐसा काम कभी न करे, जिससे प्रजा की हानि हो। समाज भी उसे ऐसा करने के लिए कभी प्रोत्साहित न करे।

संयुक्त परिवार सुरक्षा भाव देता है

- डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी

आज संयुक्त परिवार टूटने की कगार पर खड़े हैं। जिन बुराइयों के कारण युवकों में संयुक्त परिवार के प्रति निराशा है और संयुक्त परिवार में बुजुर्गों के प्रति जो उपेक्षा के भाव बढ़ते जा रहे हैं इन पर गहराई से चिन्तन किया जाना जरूरी है। नई और पुरानी पीढ़ी के मध्य वैचारिक मतभेद यूं तो हमेशा से रहे हैं पर इन दिनों 'जैनरेशन गैप' का नाम देकर इसे बहस का मुद्दा-सा बना दिया गया है। जैनरेशन गैप के साथ ही इन दिनों इससे जुड़े एक और मसले पर अक्सर बात की जाती है कि क्या संयुक्त परिवार ही परिवार का सही रूप है या यह व्यक्तित्व निर्माण में बाधक है।

इस बात में कोई दो राय नहीं कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे अनुभव, संस्कार, हुनर आदि ज्ञान का खजाना दूसरी पीढ़ी को तभी मिल सकता है जब वह पहली पीढ़ी को अपने संग रखे। इस दृष्टिकोण से देखें तो नई पीढ़ी के व्यक्तित्व का सही विकास भी संयुक्त परिवार में ही होता है। पुरानी पीढ़ी से प्राप्त ज्ञान जीवन की राह आसान बनाता है। इन सबके बावजूद अगर आप युवाओं से पूछें तो उनकी राय बिल्कुल अलग नज़र आती है। युवाओं की दृष्टि में संयुक्त परिवार आजादी पर बंदिशों का दूसरा नाम है। उनके अनुसार एकल परिवार में लोग अपनी मर्जी के अनुसार जीवन यापन करते हैं। निर्णय लेने की क्षमता भी एकल परिवार में ही विकसित होती है। एकल परिवार के समर्थकों के अनुसार यह व्यक्तित्व के विकास में भी सहायक होता है। ये लोग तो यह तक कहने से नहीं चूकते कि संयुक्त परिवार के बुजुर्ग सिवाय लड़ाई करने और हुक्म चलाने के और कुछ नहीं करते। आज जब संयुक्त परिवार विघटन के कगार पर है तब संयुक्त परिवार के सकारात्मक बिंदुओं पर नज़र डालना उपयुक्त होगा।

- कोठारी भवन,
३०-३१ उद्योग मार्ग,
कोटा - ३२४००७

ऐसे भी होते हैं इन्सान

- साहू शैलेन्द्र कुमार जैन

एक महोदय सुबह सुबह मिले। बताया-पड़ोस में डकैती पड़ गई है, रोनापीटना मचा हुआ है। कुछ, कभी का सुना याद आ गया। एक खलीफा जा रहे थे। उन्होंने देखा एक आदमी बड़े कष्ट में था। कई दिन का भूखा। जब वापस पहुंचे, खुदा के सामने बयान की उसकी परेशानियां। उसका हिसाब देखा गया। उसने एक अच्छा काम, कभी किया था। खुदा ने कहा खलीफा से कि जब जायें उधर, उससे उसकी एक ख्वाहिश पूछ लें। जब खलीफा गये उन्होंने पूछा। उस भूखे इन्सान ने कहा- एक दिन की खुराक। उसके यहां बहुत सारा भोजन पहुंच गया। उससे जितना खाया गया, खाया और बाकी भूखों में बांट दिया। दूसरे दिन उसके यहां फिर भोजन पहुंचा और उसने उसी तरह खाकर, बचा हुआ बांट दिया। खलीफा ने पूछा हैरान होकर कि यह क्या। उसने फिर नेक काम किया है भूखे को खाना खिलाकर। उसे हमेशा खाना मिलता रहा। यही एक उसूल-आज की देख, कल फिर अल्लाह देगा।

जरूरत से ज्यादा इकट्ठा न करो। ब्याज तक न कमाओ। जरूरतमंद को बिना ब्याज के दो। आम मुसलमान के घर में बरतन बहुत कम मिलेंगे। पहनने के कपड़े कम मिलेंगे, गिनती के। वजू करने में भी सिर्फ एक लोटा पानी। कहाँ से आया यह सब कुछ इस्लाम में, **लगता है यह अपरिग्रह का सिद्धांत जैन दर्शन से लिया गया है।**

एक हाजी जी के यहाँ डकैती पड़ी। बहुत कुछ डकैती में गया। सुबह सब्जी मंडी में सब्जी खरीदते मिले। मैंने पूछा तो हंसकर बोले उनके मुकद्दर का था ले गये और आप आदाब कर आगे बढ़ गये। न रिपोर्ट न ग़म। पता चला १८-२० लाख नकद और जेवर गया था।

मेरे एक मित्र हैं हाजी मौहम्मद अहमद। मक्का में पैदा हुए थे इसलिये उन्हें मक्की कहते हैं। रमजानों में शरीर से घट गये। मैंने पूछा तो बोले -"भाई साहब, बड़े मजे में रहे। इबादत में कतई खलल नहीं। न मैंने किसी को टेलीफोन मिलाया न इस दौर किसी का मोबाइल आया। साहब मैं तो चाहता हूँ ऐसा ही रहे हमेशा।"

- शेखपेन स्ट्रीट, खुर्जा

समाचार विमर्श

रईसों का एक जैन साप्ताहिक समाचार पत्र

जैन गज़ट के दिनांक ८ जनवरी, २००५ के अंक में प्रकाशक महोदय ने हम पर कृपा करके हमारे पौत्र चि. दीपक के शुभ विवाह का समाचार तो प्रकाशित कर दिया, पर हमने जो जैन गज़ट की सहायता के लिये रु. १०१/- भेजा था उसके लिये बताया गया कि हम रु. ५०१/- से कम की सहायता का समाचार नहीं देते। ठीक ही है कि उनके पास पाँच सौ रुपये अथवा उससे अधिक देने वालों की भरमार रहती है।

हमारी स्मरण शक्ति लम्बी बीमारी के कारण बहुत कम हो गई है। फिर भी हमें ध्यान नहीं आता है कि कभी 'जैन गज़ट' में महासभा या 'जैन गज़ट' के विधिवत् आडिटेड हिसाब छपे देखे हों।

जैन गज़ट का सारा प्रबन्ध खण्डेलवाल रईसों के हाथ में है और उनके लिये हर दिगम्बर मुनिवेशी पूजनीय है चाहे वह सिंहरथ प्रवर्तन करने का नाटक करने वाले हों या फिर 'आज तक' के जुर्म स्तम्भ में 'साधु या शैतान' के शीर्षक से दिखाये गये दिगम्बर आचार्य हों। जब तक ऐसी स्थिति रहेगी दिगम्बर श्रमणाचार में किसी सुधार की आशा करना व्यर्थ है।

- अजित प्रसाद जैन

अंध श्रद्धा के घातक कदम

'जैन गज़ट' जुलाई अंक में, बम्बई में चातुर्मास स्थापना के समाचार में छपा कि "स्वामी वात्सल्य प्रसाद वितरित किया गया।" जहाँ तक मेरी जानकारी है, जैन धर्म के दोनों पंथों में प्रसाद का प्रावधान नहीं है। रूढ़ि अर्थ में यह हिन्दू (सनातनी) प्रथा है जिसमें इष्टदेव/देवी को भोग लगाकर शेष अंश को श्रद्धालुओं में वितरित किया जाता है, जिसे वे श्रद्धापूर्वक खा लेते हैं। सन्दर्भित समाचार में यदि स्वामी से गुरु/आचार्य अभिप्रेत हैं, तब भी प्रसाद का कोई औचित्य नहीं है। संभवतः यहाँ स्वल्पाहार या प्रीतिभोज अभिप्रेत है जो गृहस्थ श्रावकों के सन्दर्भ में अनुचित नहीं है। परन्तु प्रसाद शब्द का प्रयोग अनुचित है जैन संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में।

जैन आयोजनों में कुंभ और वृहद् विश्वशांति यज्ञों का प्रवेश हो चुका है। अब प्रसाद भी घुसपैंठ कर चुका है। वह दिन दूर नहीं जब पूजन में नैवेद्य के छद्मवेष में छप्पन भोग भी आ जावें।

क्या हमारी संस्कृति की विशिष्टता खतरे में नहीं है?

- श्री कैलाशचंद जैन, कोलकाता

गीत

नहीं चाहते अगर भटकना

नहीं चाहते अगर भटकना, आओ रत्नत्रय अपनायें।
बाहर दिखता मिथ्यादर्शन,
राग-द्वेष का जटिल प्रशासन,
इससे पिण्ड छुड़ाने भर को, दृढ़तापूर्वक आगे आयें।
नहीं चाहते अगर भटकना, आओ रत्नत्रय अपनायें।।१।।
अन्तरंग है सम्यक्दर्शन,
वीतरागता का अनुशासन,
स्वानुभूति का पान कर सकें, ऐसा अपना चित्त बनायें।
नहीं चाहते अगर भटकना, आओ रत्नत्रय अपनायें।।२।।
मोह-नींद से जैसे जागें,
सारे भय-भ्रम जड़ से भागें,
हो निर्भय स्वाधीन जिन्दगी, स्व-पर भेद समझें-समझायें।
नहीं चाहते अगर भटकना, आओ रत्नत्रय अपनायें।।३।।
सम्यक् ज्ञान जगे जीवन में,
भेद ज्ञान हो अन्तर्मन में,
क्षण में बंध सभी निर्जर हों, आत्म-लोक में जगें जगायें।
नहीं चाहते अगर भटकना, आओ रत्नत्रय अपनायें।।४।।
सम्यक् चारित हो अभ्युदय,
स्वतः छूटते सारे संचय,
उतर सके आकाश हृदय में, सारे घेरे स्वयं नसायें।
नहीं चाहते अगर भटकना, आओ रत्नत्रय अपनायें।।५।।

- विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया,
मंगल दर्शन, सर्वोदय नगर, अलीगढ़- २०२००१

(आत्म व्यंग्य)

मैं : एक सावधान मनीषी

अब/जब मैं 'वरिष्ठ' हो गया हूँ;
क्यों डरने लगा हूँ धन-कुबेरों से;
और ईर्ष्याग्रस्त कुछ साधु-संत-आचार्यों से?
क्यों नहीं हो पा रहा हूँ तुष्ट अपने विचारों से?
शायद मैंने कोई सत्य-स्वर दबाया है
उसे समय पर पाठकों तक नहीं पहुँचाया है।
जवानी में/मैं जिन
दो नम्बरी-धनवानों-संतों पर अंगुली उठाता रहा हूँ
अब उन्हीं के इशारों पर स्व को चलते पा रहा हूँ!
सखे, मैं तो सिद्धान्तों का था रक्षक
अब क्यों बन गया हूँ भक्षक ?
यह सच है-मैं बूढ़ा हुआ हूँ; पर कलम ?
वह सदाबहार/ है मौलिकता की खान,
फिर क्यों होता हूँ परेशान ?
मुझे सत्य को क्षितिज तक ले जाना चाहिए,
ढीले शरीर का नहीं, लेखनी का धर्म निभाना चाहिए।
ओ मेरे अनुभव ! मुझे शक्ति दो;
मैं सत्य का पक्षधर रहा हूँ;
रहूँ आगे भी सत्यान्वेषी।
मिथ्या-व्यवहार से बचूँ,
क्यों बनूँ दोषी ?

-श्री सुरेश जैन 'सरल'
२६३, सरल कुटी, गढ़ाफाटक, जबलपुर (म.प्र.)

क्षणिकाएं

विशिष्ट राग से जो काम होता है
जग में उसका बड़ा नाम होता है
सराहनीय साहस उनका जो उसे उजागर करते,
भले ही उसका क्या अंजाम होता है।।

ब्रह्माण्ड में कामकाण्ड सबसे सरस-अनूठा है
जो उससे रूठा, उससे जग रूठा है
देवता भी नहीं रहे यहाँ उससे अछूते,
आम इन्सान क्या, साधु भी डूबा है।।

हम हैं सुसंस्कृत, उपगूहन को हैं अपनाते।
कितनी हो गंदगी, उसे छिपा, महिमामंडित बनाते।।

ऊपर से छि-छि कहने वाले भी यहाँ
कामकथा सुनते-पढ़ते रस लेते नहीं अघाते
सामाजिक मर्यादाओं में बंधे हैं तो क्या,
हैं इन्सान, मन उनके भी मचल जाते।।

- रमा कान्त जैन
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

मुक्तक

बढ़ता शिथिलाचार है, रोको इसको आज।
अरज 'पारदर्शी' करे जागो जैन समाज।।

- सन्त ऊँ पारदर्शी
२६१, उत्तरी आयड, उदयपुर-३१३००१

साहित्य–सत्कार

(१) प्राकृत एवं जैन विद्या : शोध-सन्दर्भ (Bibliography of Prakrit and Jain Research): परिवर्तित-परिवर्धित तृतीय संस्करण, २००४ ई; ले- डॉ. कपूरचन्द जैन; प्र. श्री कैलाशचंद जैन स्मृति न्यास, खतौली-२५१२०१; पृ. २३४; मूल्य-२००/-

मूलतः विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली, के प्रोजेक्ट के रूप में A Survey of Prakrit and Jainological Research का प्रणयन डॉ कपूरचन्द जैन ने किया था जो **प्राकृत एवं जैन विद्या शोध संदर्भ** के नाम से १९८८ में प्रकाशित हुआ था। उसमें ४५२ शोध प्रबंधों की सूची दी गई थी। पुनः १९९१ में उसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ जिसमें ६४५ शोध-प्रबंधों की सूचना दी गई। १९९३ में एक परिशिष्ट भी प्रकाशित किया गया था जिसमें १४५ अतिरिक्त शोध प्रबंधों की जानकारी दी गई।

डॉ. कपूरचन्द अपने इस कार्य में निष्ठापूर्वक लगे रहे। **'शोधादर्श'** में प्रकाशित सूचनाओं का भी उन्होंने उपयोग किया और हमसे यदा-कदा परामर्श भी किया जिसका उल्लेख उन्होंने उपक्रम में किया भी है। यह संतोष का विषय है कि अब पूर्णतः परिवर्तित और परिवर्धित तृतीय संस्करण में उन्होंने भारतीय विश्वविद्यालयों में वर्ष २००३ तक प्रस्तुत ११०१ शोध प्रबंधों की विषय-वार वर्गीकृत सूची दी है। अपने संग्रहालय में संग्रहीत शोध-प्रबंधों का संक्षिप्त परिचय भी दिया है।

साथ ही डॉ. नन्दलाल जैन, रीवा, द्वारा "विदेशों में जैन विद्या शोध (Jain ological Researches Abroad)" के अन्तर्गत १३१ शोध प्रबंधों का भी विषयवार वर्गीकृत परिचय दिया है। डॉ. नंदलाल जैन का Prologue और डॉ. अशोक कुमार जैन (रुड़की) का Preface भी दृष्टव्य हैं।

लेखक डॉ. कपूरचन्द जैन और उनके सहयोगी इस श्रम-साध्य उपयोगी सन्दर्भ सूची को प्रकाशित करने के लिए साधुवाद के पात्र हैं। इससे जैन विद्या में शोध की प्रवृत्ति अग्रसर होगी।

(2) Basic Jain Culture Non-possession : by Padamchand Shasrti (Original in Hindi), English Translation by Dr. Nand Lal Jain (Rewa); pub. Vir Sewa Mandir, 21, Daryaganj, New Delhi-110002; Jan. 2005; pp. 48, Price : Swadhyaya.

Dr. Nand Lal Jain has faithfully translated into English the **मूल जैन संस्कृति अपरिग्रह** authored by Pt. Padam Chand Shastri, an elderly erudite scholar of Jain scriptures and doctrines. The burden of the exposition is that if one wishes to be a true Jain, he should first restrict and limit his psychical and physical possessions. When they are restrained, there will automatically be the awakening of vows of non-violence etc. because possession is the origin of all sins and the basis of Jain culture is non-attachment and non-possession.

Dr. N. L. Jain deserves thanks for making a scripursit view of non-possession as enunciated by the Jain teachers, particularly of the Digambara tradition, intelligible to a wider readership through his translation in Engilsh. **-Dr. Shashi Kant**

(३) **महाप्रभा स्मृति-ग्रन्थ** : लेखिका- सम्पादिका साध्वी डॉ. प्रियदर्शना श्री एवं साध्वी डॉ. सुदर्शना श्री ; प्राप्तिस्थान : श्री राजेन्द्रसूरि जैन कीर्तिमंदिर तीर्थ ट्रस्ट, सेवर रोड, पो. भरतपुर (राज.); २००४ ई.; पृ. ४७२; सचित्र; मूल्य पठन-पाठन, आचरण।

पाँच खण्डों में संजोया गया यह विशालकाय ग्रन्थ लेखिका-सम्पादिका साधवी द्वय ने अपनी दादी गुरुणी पूज्यश्री महाप्रभाश्री म.स. की स्मृति को समर्पित किया है। वरमंडल, जिला धार (म.प्र.) में १३ नवम्बर, १९१० ई. को श्रेष्ठी जड़ावचंद और श्रीमती बजीबाई की पुत्री के रूप में जन्मी बालिका लीलावती कालान्तर में लगभग २७ वर्ष की अल्पवय में वैधव्य का दुख भोग हृदय में वैराग्य भाव उत्पन्न होने पर लगभग ४० वर्ष की वय में सन् १९५१ ई. की वैशाख शुक्ल दशमी को जिला धार में श्री मोहनखेड़ा तीर्थ पर श्री हेतश्री म.सा. एवं श्री मुक्तिश्री म.सा. से दीक्षा प्राप्त कर साध्वी महाप्रभा श्री बनी थीं। लगभग ४९ वर्ष तक संयम-तप का स्थविर जीवन व्यतीत कर, समता-सरलता-सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति बन, स्वाध्याय-शिक्षा के प्रति अथाह अनुराग रख, 'दादी पौत्री महाराज' के नाम से पहचानी जाने वाली इन साध्वीश्री का महाप्रयाण ८९ वर्ष की वय में १ मार्च, २००० ई. को ओपोनी जैन धर्मशाला, धाणसानगर, (राज.) में हुआ था।

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में १५४ मनीषियों द्वारा इन साध्वीरत्ना की गद्यात्मक श्रद्धार्चना और २० द्वारा काव्यात्मक श्रद्धार्चना समाहित है; द्वितीय खण्ड: अभिन्दनीय व्यक्तित्व के अर्न्तगत उनकी जीवन यात्रा और व्यक्तित्व को ९८ पृष्ठों में उभारा गया

है; तृतीय खण्ड में ६८ पृष्ठों में उनके व्यक्तित्व के विविध पक्षों को रेखांकित किया गया है; चतुर्थ खण्ड : विज्ञता के अन्तर्गत ५६ पृष्ठों में उनके चिन्तन-विचारों का सार निहित है तथा पंचम खण्ड में शेष ३४ पृष्ठ विविधा को समर्पित हैं। ग्रन्थ का प्रकाशन नयनाभिराम है और यह भरेपूरे सम्पन्न परिवार की उक्त प्रेरणास्पद साध्वीप्रवरा की गरिमा के अनुरूप है।

(४) **बीसवीं शताब्दी की जैन विभूतियां:** लेखक श्री मांगीलाल भूतोड़िया, प्र. प्राकृत भारती अकादमी, १३ ए मेन मालवीय नगर, जयपुर-३०२०१७ एवं प्रियदर्शी प्रकाशन, छठी पट्टी, लाडनूं (राज.) - ३४१३०६; प्रथम संस्करण-२००३-०४; पृ. ४४०; मूल्य रु. ५००/-

प्रस्तुत ग्रंथ में तीन खण्डों में सन् १६०० से २००० ई. के मध्य दिवंगत हुए प्रेरणास्पद १०८ व्यक्तियों का जीवनवृत्त संजोया गया है। प्रथम खण्ड में २६ जैन आचार्य/महात्मा/मुनि/साध्वीगण; द्वितीय खण्ड में ४६ न्यायविद्/ वैज्ञानिक/ पण्डित/ लेखक/ राजनेता/ कलाकार/प्रशासक तथा तृतीय खण्ड में ३६ उद्योगपति/श्रेष्ठी/ धर्मप्रभावक समाहित हुए हैं। साथ ही परिशिष्ट में ग्रन्थ के १८ परम संरक्षकों, ३१ संरक्षकों, ग्रंथ-संयोजक स्व. श्री हजारीमल बांठिया तथा सह-संयोजक श्री ललित कुमार नाहटा का सचित्र परिचय दिया गया है। लेखक का तो सचित्र परिचय पुस्तकान्त के पूर्व है ही। ग्रन्थ के लिये १०८ विभूतियों का चयन करते समय यूं तो जैनधर्म की सभी आम्नायों का प्रतिनिधित्व हुआ है, किन्तु उसमें ग्रन्थ प्रणेता के अपनी आम्नाय के महानुभावों का बाहुल्य है। चार महिलाएं भी स्थान पायी हैं जिनमें २ साध्वी हैं, १ विदेशी विदुषी हैं और एक आरा की चन्दाबाई जी हैं।

सभी जीवनवृत्त काफी सजीव, रोचक और प्रेरक हैं। किन्तु इन सभी जीवनवृत्तों को स्वयं लिखनें का जो श्रेय बन्धुवर भूतोड़िया जी ने लिया है, उसके सम्बन्ध में वह स्वयं अपने अन्तर्मन में झांक लें कि कहाँ तक सही है। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि ग्रन्थ में क्रमांक ४६ (पृष्ठ २०६-२१४) पर समाहित पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन पर आलेख मुझसे स्व. श्री हजारीमल बांठिया जी ने सानुरोध मंगवाया था और क्रमांक ४४ (पृष्ठ १७३-१७६) पर श्री जुगलकिशोर मुख्तार विषयक आलेख भी 'शोधादर्श-४६' में 'गुरुगुण-कीर्तन' के अन्तर्गत प्रकाशित मेरे आलेख 'जुगल किशोर मुख्तार युगवीर' पर आधारित है।

संकलक-सम्पादक के रूप में बन्धुवर भूतोड़िया जी द्वारा किया गया श्रम श्लाघनीय है, किन्तु अच्छा होता कि वह जिनसे और जहाँ से सामग्री संकलित की गई

है उनका आभार भी व्यक्त कर देते। ऐसा करने से उनकी गरिमा कम नहीं होती, अपितु बढ़ती ही।

(५) पावन सिद्धक्षेत्र शौरीपुर एवं बटेश्वर अतिशय क्षेत्र : लेखक श्री रामजीत जैन; प्र. नेमीचन्द, शारदा कुमार, दीपक बोहरा, जैसवाल जैन मन्दिर के पास, दानाओली, लश्कर- ग्वालियर; २००४ ई., पृ. ७३

अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक और पुरातात्विक (तीर्थस्थल सम्बन्धी) कृतियों के प्रणेता वयोवृद्ध श्री रामजीत जैन, एडवोकेट, की लेखनी से प्रसूत प्रस्तुत पुस्तिका में २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की जन्मभूमि शौरीपुर और उससे २ कि.मी. दूर स्थित बटेश्वर अतिशय क्षेत्र के विषय में विविध ज्ञानवर्द्धक सामग्री संजोयी गयी है। इन दोनों ही क्षेत्रों से पाठकों को परिचित कराने में यह कृति सहायक होगी। कृति के प्रणयन हेतु लेखक और सुरुचिपूर्ण प्रस्तुति के लिये प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

(६) महावीर की जन्मभूमि-कुण्डपुर : ले. श्री राजमल जैन; प्र. भगवान महावीर स्मारक समिति, झेलम-पाटलीपुत्र पथ, राजेन्द्रनगर, पटना-१६; द्वि.सं. ४-११-२००४; पृ. १०७; मूल्य चिंतन और सम्यक् निर्णय।

प्रस्तुत पुस्तक के सन् २००३ में प्रकाशित ६६ पृष्ठीय प्रथम संस्करण का समीक्षात्मक परिचय शोधादर्श-४६ में पृष्ठ ६८ पर दिया गया था। चूंकि २४वें तीर्थंकर वर्धमान महावीर की जन्मभूमि का विवाद दलगत आस्थाओं से अभी भी जूझ रहा है, निष्पक्ष व्यक्तियों को चिंतन कर सम्यक् निर्णय लेने में यह पुस्तक सहायक होगी। इस परिवर्धित संस्करण में इस समस्या के समाधान हेतु विद्वान लेखक ने कुछ और भी प्रमाण-सामग्री जुटायी है। साथ ही वैशाली-कुण्डपुर के दर्शनार्थी यात्रियों के लिये उपयोगी जानकारी भी दी है। पुस्तक संग्रहणीय है।

(७) ऊषा ! तुम कौन : रचयिता श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'; प्र. त्रिमूर्ति-प्रकाशन, 'चन्द्रा-मण्डप', ३७०/२७, हातानूर बेग, सहादतगंज, लखनऊ-३; जनवरी २००४ ई., पृ. ४४, मूल्य रु. ५०/-

साहित्य की सभी विधाओं में लेखनी चलाने में दक्ष बन्धुवर दयानन्द जड़िया 'अबोध' ने १७२ छन्दों में संदेहालंकार को आधार बना और पौराणिक कथानकों एवं प्राकृतिक बिम्बों का सहारा लेते हुए ऊषाकाल के विषय में प्रस्तुत कृति 'ऊषा ! तुम कौन हो ?' का प्रणयन किया है। सौम्य-सरस-प्रांजल भाषा में कल्पना की उड़ान भरते हुए कवि ने अपनी नायिका ऊषा का विविध रूपों में वर्णन किया है। एक छन्द में वह कहता है-

सुन्दरता साक्षात षोडसी- सम सज-धज सम्मुख आई।
जिसके पाटम्बर भूषण में- भाव-भंगिमा इठलाई।।

काव्यरसिकों को कृति आनन्दित करेगी। अबोध जी इसके प्रणयन हेतु साधुवाद के पात्र हैं।

(८) दीपमाला जलाओ : रचयिता श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'; प्र. त्रिमूर्ति-प्रकाशन, लखनऊ; सितम्बर २००४ ई.; पृ.-३६; मूल्य रु. २०/-

कविवर अबोध जी ने १०१ भुजंगप्रयात छन्दों में प्रणीत विविध विषयक १८ रचनाओं की इस कृति को 'दीपमाला जलाओ' नाम देना पसन्द किया क्योंकि उन्हें दीप जलाना अत्यन्त शुभ लगा। सभी रचनाएं मनमुग्ध करने वाली हैं। किन्तु प्रकृति-चित्रण और नायिका-श्रृंगारवर्णन में कवि-कल्पना ने अपना रंग-रस खूब घोला है। इस आनन्ददायी कृति के प्रणयन हेतु अबोध जी साधुवाद के पात्र हैं।

(९) यह मेरा हिन्दुस्तान नहीं : लें. श्री अक्षय जैन; प्र. 'दाल-रोटी', १३, रश्मन अपार्टमेन्ट, उपासनी हॉस्पिटल के ऊपर, एस. एल. रोड, मुलुंड (प.), मुंबई-४०००८०; दिसम्बर २००३; पृ. १२८; मूल्य रु. ४०/-

'दाल-रोटी' त्रैमासिक के संपादक, कवि, कहानीकार एवं व्यंग्यकार श्री अक्षय जैन की लेखनी से प्रसूत प्रस्तुत कृति में समाहित ६२ व्यंग्य निबन्धों में वर्तमान सामाजिक-राजनैतिक परिवेश में दिखाई पड़ने वाली विसंगतियों पर सरल मुहावरेदार भाषा में मनोरंजक ढंग से सशक्त प्रहार किया गया है। पुस्तक पठनीय है। इसके प्रणयन हेतु श्री जैन को साधुवाद !

(10) Meri Bhavana : by Pt. Jugal Kishore 'Yugaveer'; pub. Sri N. Sugalchand Jain, Amrithavarshini Religious & Charitable Trust, 11, Ponnapa Lane, Triplicane, Chennai-5; 3rd. ed. 2003; pp. 16.

The nicely brought out small treatise comprises Namokar Mahamantra, the one considered to be sacred five fold salutation Mantra in Jain community, and the very poplar Meri Bhavna (my longings) composed by Pt. Jugal Kishore 'Yugaveer' in 1914 A.D., with its English transliteration and English rendering. The Publisher deserves congratulations for bringing out such a nice publication to popularise both Namaskar Mahamantra and Meri Bhavna among non-Jains and Jains residing abroad.

— Rama Kant Jain

प्रेरक प्रसंग

दहेज में लिया मात्र एक रुपया

जोधपुर से प्रकाशित मासिक 'ओसवाल महिमा' के फरवरी २००५ के अंक में छपे समाचार के अनुसार मुम्बई के उद्योगपति और समाजसेवी श्री गेहरीलाल वया के सुपुत्र चि. सुनील का विवाह गत दिनों उदयपुर के श्री विनय भाणावत की सुपुत्री सौ. यशा के साथ सम्पन्न हुआ। श्री वया ने शादी से पूर्व ही अपने समधी श्री भाणावत को निरर्थक खर्चों से दूर रहने की सलाह दी थी और जब बेटी की विदाई के समय श्री भाणावत बेटी को नकदी और दस हजार वर्ग फुट जमीन की रजिस्ट्री के कागज देने लगे तो श्री वया ने दहेज न लेने के संकल्प का हवाला देते हुए उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा वह बेटी लेने आये हैं। अन्ततः भाणावत परिवार ने श्री वया को शगुन के तौर पर एक रुपया लेने को राजी किया।

भले ही श्री भाणावत द्वारा अपनी प्रतिष्ठा और क्षमता के अनुरूप वर पक्ष के स्वागत-सत्कार में कोई कमी न रक्खी गई हो, श्री वया का आचरण सराहनीय और अनुकरणीय है।

-रमा कान्त जैन

कृपया ध्यान देवें

शोधादर्श के ग्राहकों से विनम्र अनुरोध

शोधादर्श का ग्राहक शुल्क प्रायः मनीआर्डर द्वारा प्राप्त होता है। इधर जो मनीआर्डर कूपन प्राप्त हो रहे हैं उन पर डाक विभाग की कृपा से प्रेषक का नाम व पता नदारद रहता है और संदेश भी अपूर्ण या अस्पष्ट रहता है। अतः यह जानना-समझना कठिन हो जाता है कि मनीआर्डर किन सज्जन ने भेजा है और किसलिये। अतः विनम्र अनुरोध है कि मनीआर्डर द्वारा शुल्क भेजने के साथ-साथ एक पोस्टकार्ड पर अपना पूरा नाम व पता (पिनकोड सहित) अंकित करते हुए मनीआर्डर द्वारा किस वर्ष के शुल्क हेतु अथवा किस प्रयोजन हेतु कितनी धनराशि किस तारीख को भेजी गई है **'यह सूचना सम्पादक शोधादर्श के नाम ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४'** के पते पर अवश्य भेजने की कृपा करें ताकि शोधादर्श का प्रेषण उन्हें सुनिश्चित किया जा सके।

समाचार विविधा

जैन म्यूजियम

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ गिरिराज ट्रस्ट, विजयवाड़ा (आन्ध्र प्रदेश) द्वारा प्राचीन पुरातात्विक जैन सांस्कृतिक धरोहरों की रक्षा और संग्रह हेतु जैन म्यूजियम की स्थापना के लिये लगभग चालीस लाख रुपयों की लागत से भवन निर्माण कराया जा रहा है।

गणिनी ज्ञानमती प्राकृत शोध पीठ का शुभारंभ

१४ नवम्बर, २००४ ई. को सुदामानगर, इन्दौर में नवनिर्मित भवन में दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) के अन्तर्गत स्थापित गणिनी ज्ञानमती प्राकृत शोधपीठ का उद्घाटन हुआ।

गणितीय इतिहास एवं विरासत पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन

१६ से १६ दिसम्बर, २००४ ई. तक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर द्वारा शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय इन्दौर एवं भारतीय गणित इतिहास परिषद दिल्ली के साथ मिलकर एक चार दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन 'गणितीय इतिहास एवं विरासत' पर इन्दौर में सम्पन्न हुआ। संगोष्ठी में ११५ भारतीय और २५ विदेशी विद्वानों ने सहभागिता की तथा ३२ आमन्त्रित व्याख्यान एवं ४७ शोधपत्रों का वाचन हुआ।

गोम्मटेश्वर महामस्तकाभिषेक-२००६

श्रवणबेलगोल (कर्णाटक) में स्थित ५७ फुट ऊँची गोम्मटेश्वर बाहुबलि की मूर्ति का १२ वर्षीय महामस्तकाभिषेक फरवरी २००६ ई. में आयोजित होगा। समारोह के सफल आयोजन हेतु कर्णाटक सरकार ने २५ करोड़ रुपये की धनराशि आवंटित की है। केन्द्र सरकार ने भी इसकी राष्ट्रीय गरिमा को अभिचिन्हित करते हुए ५० करोड़ रुपये की धनराशि आवंटित करने की उदारता प्रदर्शित की है।

वीर अहिंसक संगठन

भगवान महावीर के 'अहिंसा परमो धर्मः' एवं 'जीओ और जीने दो' आदि सिद्धान्तों को मूर्त रूप देने हेतु ७०, कैलाश हिल्स, ईस्ट ऑफ कैलाश, नई दिल्ली-११००६५ में 'वीर अहिंसक संगठन' की स्थापना की गई है जिसके राष्ट्रीय अध्यक्ष पूर्व न्यायाधीश डॉ. धन्य कुमार जैन तथा महासचिव श्री मणीन्द्र जैन हैं।

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय शताब्दी वर्ष समारोह

६ जनवरी, २००५ ई. को श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी, में पं. निर्मल जैन, सतना, की अध्यक्षता में देश के विभिन्न स्थानों से पधारे विद्वज्जन की एक संगोष्ठी हुई और समागत विद्वानों का अभिनन्दन-सम्मान किया गया। कार्यक्रम का संचालन शताब्दी समारोह के संयोजक प्रो. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' ने किया।

श्रावकाचार पर राष्ट्रीय सम्मेलन

२० जनवरी को चेन्नई में मद्रास विश्वविद्यालय के जैन धर्म विभाग के माध्यम से 'श्रावकाचार' पर राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। दो सत्रों में सम्पन्न इस सम्मेलन में दक्षिण भारत के मूर्धन्य दिगम्बर जैन विद्वानों ने सहभागिता की। अध्यक्षता विश्वविद्यालय के कुलपति श्री एस.पी. त्यागराजन ने की। विशेष अतिथि श्री एस. श्रीपाल, सेवानिवृत्त पुलिस महानिदेशक एवं चेयरमैन रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनालॉजी, चेन्नई ने 'Facets of Jainism-Series I' पुस्तक का विमोचन कर अपना ओजपूर्ण भाषण दिया।

गणतंत्र दिवस समारोह में जैन संस्कृति का प्रदर्शन

२६ जनवरी, २००५ ई. को ५६वें गणतंत्र दिवस समारोह पर राजपथ, नई दिल्ली में प्रदर्शित झांकियों में कर्णाटक राज्य की झांकी में गोम्मटेश्वर बाहुबली का अभिषेक दर्शाया गया और महामस्तकाभिषेक के पद्य बोले गये जिसका उपस्थित दर्शकों सहित राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और प्रधानमंत्री ने करतल ध्वनि से स्वागत किया। इस झांकी ने प्रथम पुरस्कार अर्जित किया। समारोह में एक जैन विद्यार्थी ने भी वीरता पुरस्कार प्राप्त किया और दो जैन स्कूलों के छात्रों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

डाक विभाग द्वारा जैन मन्दिर पर विशेष कवर

भारतीय डाक विभाग ने सतना (मध्य प्रदेश) में विक्रम संवत् १९३७ (१८८० ई.) की माघ शुक्ल ५ को स्थापित भ. नेमिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर की स्थापना के १२५ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में अपनी दो दिवसीय डाक टिकट प्रदर्शनी सतना पेक्स-२००५ के दौरान २८ जनवरी को एक विशेष कवर उक्त मंदिर और उसके मूलनायक भ. नेमिनाथ की प्रतिमा के सुन्दर चित्र मुद्रित कर जारी किया है। साथ ही इस अवसर पर लगाई गई विशेष मोहर कैन्सिलेशन में सतना जिले के ऐतिहासिक

पतियानदाई जैन मंदिर का तीन तीर्थंकर प्रतिमाओं से युक्त दसवीं शताब्दी का एक पुराशिल्प भी अंकित है।

गोवा राज्य में प्रथम दिगम्बर जैन मन्दिर

३० जनवरी को गोवा राज्य के मडगांव शहर में मुगाली दवर्ली क्षेत्र में आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर एवं मानस्तंभ का शिलान्यास महोत्सव एवं भूमिपूजन हुआ। यह गोवा राज्य में निर्मित होने जा रहा प्रथम दिगम्बर जैन मंदिर है।

भारतीय कला एवं साहित्य में स्वस्तिक पर संगोष्ठी

६ फरवरी-ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी, विद्यावारिधि (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की ६३वीं जन्म जयन्ती पर उनका पुण्य स्मरण करने हेतु श्री प्रकाशचन्द्र जैन 'दास' की अध्यक्षता में संगोष्ठी हुई। मुख्य अतिथि डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव रहे और संचालन श्री रमा कान्त जैन ने किया। विषय का सूत्रपात डॉ. शशि कान्त ने किया। प्राचीनतम लोकमान्य प्रतीक स्वस्तिक के भारतीय, विशेषकर जैन, कला एवं साहित्य में महत्व और रूपांकन पर डॉ. श्रीवास्तव ने सारगर्भित वार्ता में विशद प्रकाश डाला। वार्ता पर हुई चर्चा में डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी, डॉ. वृषभ प्रसाद जैन, इंजी. राजीव कान्त, डॉ. शशि कान्त और डॉ. शैलेन्द्र शुक्ल प्रभृति मनीषियों ने भाग लिया। डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' एवं श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' ने श्रद्धेय डॉक्टर साहब को काव्यांजलि अर्पित की तथा पं. विष्णुदत्त शर्मा, श्री रवि मोहन त्रिवेदी और श्री प्रकाश चन्द्र 'दास' ने श्रद्धा-सुमन। श्री शैलेन्द्र शुक्ल के सरस गीतों, इंजी. राजीव कान्त की रचना, श्री अनिल बांके और श्री रमा कान्त की हास्य-व्यंग्य क्षणिकाओं ने गोष्ठी को रससिक्त किया। गोष्ठी में समुपस्थित सभी ने श्रद्धेय डाक्टर साहब को अपनी विनयांजलि अर्पित की।

भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव

६ जनवरी, २००५ ई. को भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में उनके जन्मकल्याणक के तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का मंगल उद्घाटन गणिनी ज्ञानमती माताजी के सान्निध्य में हुआ तथा इस श्रृंखला में १२ फरवरी, २००५ ई. को टिकैतनगर में प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मुलायमसिंह यादव द्वारा **'पार्श्वनाथ वर्ष'** का शुभारम्भ किया गया। इस अवसर पर मुख्यमंत्री ने **'भगवान महावीर हिन्दी-अंग्रेजी जैन शब्दकोश'** का लोकार्पण भी किया।

अहिंसा इंटरनेशनल के संस्थापक महासचिव का भव्य अभिनन्दन

२० फरवरी को नई दिल्ली में जैनत्व और अहिंसा का देश एवं विदेश में प्रचार-प्रसार में सम्पूर्ण जीवन समर्पित करने वाले अहिंसा इन्टरनेशनल के संस्थापक महासचिव **श्री सतीश कुमार जैन** का भव्य सार्वजनिक अभिनन्दन कर उन्हें **'विद्वत्-रत्न'** की उपाधि से सम्मानित किया गया। 'अहिंसा वॉयस' पत्रिका के संस्थापक-सम्पादक रहे, अनेक कृतियों के प्रणेता श्री सतीश जी की नवीनतम उपलब्धि है उनकी ६०० पृष्ठीय कृति "Jainism, its Literature, Art and Archaeology and the Jains in Global Perspective'.

महाकुंभ मस्तकाभिषेक

भ. ऋषभदेव की जन्मभूमि अयोध्या में दिनांक १ से ३ अप्रैल, २००५ ई. को भ. ऋषभदेव की ३१ फुट उत्तुंग प्रतिमा का महाकुंभ मस्तकाभिषेक का आयोजन है।

स्वास्थ्य चर्चा

ग्रीष्म ऋतु आ रही है और अपने साथ ककड़ी, खीरा, खरबूजा और तरबूज की बहार भी ला रही है। इन सभी फलों में पानी की मात्रा अधिक होती है जो पेट को साफ करने तथा रिहाइड्रेशन का कार्य करती है।

कच्ची अम्बी का पन्ना लू से बचाव करता है। पुदीना और नींबू का सेवन भी स्वास्थ्य के लिये हितकर रहता है।

लौकी, तुरई और परवल की सब्जियां भी पेट को सही रखने में कारगर होती हैं। चुकन्दर पेट की सफाई के लिये बहुत ही बेहतरीन होता है और किडनी में होने वाली पथरी की समस्या को भी दूर करता है। साथ ही लीवर और पित्ताशय से विषैले पदार्थ बाहर निकालने में यह सहायक होता है। इसमें विटामिन ए, बी और सी काफी मात्रा में होता है, अतः यह खून की कमी को दूर करता है।

फलों में सेव एक प्रकार के टानिक का काम करता है। यह कब्ज को दूर करता है, कोलेस्ट्राल को कम करता है और शरीर से विषैले पदार्थ बाहर निकालता है।

अभिनन्दन

सुश्री ममता जैन (साइप्रस) को उनके शोध-प्रबन्ध **"उत्तर प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता : उपलब्धि और मूल्यांकन"** पर ज्योतिबा फुले विश्वविद्यालय, बरेली ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की। शोध-प्रबन्ध में जैन पत्रिकाओं, जिनमें **शोधादर्श** भी सम्मिलित है, को भी मूल्यांकित किया गया है।

श्रीमती कुसुम लूनिया (दिल्ली) को उनके शोध-प्रबन्ध **"जीवन की कला : जैन जीवन शैली"** पर जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

डॉ. विनय शाह (बैंक अधिकारी, उदयपुर) को समाज उत्थान में योगदान हेतु मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर ने मानद विद्यावाचस्पति उपाधि प्रदान की।

डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर को भारतीय गणित इतिहास परिषद की Executive Council का सदस्य तीन वर्ष के लिये सर्वानुमति से मनोनीत किया गया।

२२ दिसम्बर, २००४ ई. को नई दिल्ली में पूर्व राजदूत एवं विख्यात जैन विद्वान **डॉ. एन. (नरेन्द्र) पी. जैन** को उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत ने चेतन्य काश्यप फाउण्डेशन की ओर से **"जैन गौरव अलंकरण २००४"** प्रदान किया।

प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान वैशाली (मुजफ्फरनगर) में प्राध्यापक रहे **डॉ. ऋषभचन्द्र जैन** को उक्त संस्थान में निदेशक के गौरवपूर्ण पद पर नियुक्त किया गया।

जैन गज़ट के सम्पादक **श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद**, को उनके लेख संग्रह **'समय के शिलालेख'** और **'चिन्तन प्रवाह'** पर **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार, २००३** प्रदान करने की घोषणा की गई।

डॉ. जी. जवाहरलाल, हैदराबाद, को उनकी कृति Jainism in Andhra (as depicted in inscriptions) हेतु **वर्ष २००२ का ज्ञानोदय पुरस्कार** तथा **श्री रामजीत जैन, एडवोकेट, ग्वालियर** को उनकी कृति **'गिरनार माहात्म्य'** हेतु **वर्ष २००३** का **ज्ञानोदय पुरस्कार** की घोषणा की गई।

१५ जनवरी, २००५ ई. को विजय वल्लभ स्मारक दिल्ली में आचार्य श्रीमदात्म-वल्लभ-समुद्र-इन्द्रदिन्न सूरीश्वर म. के क्रमिक पट्टघर की पदवी **शांतिदूत आचार्य श्री विजय नित्यानंदसूरीश्वर म.** को प्रदान की गई।

१६ जनवरी, २००५ ई. को जयपुर में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के प्राचार्य, 'जैन पथप्रदर्शक' पाक्षिक के सम्पादक, प्रवचनकार एवं मनीषी विद्वान् **पं. रतनचन्द भारिल्ल** का जैनतत्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में योगदान हेतु अभिनन्दन कर उन्हें **'रत्नदीप'** अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया गया।

हेडगेवार अस्पताल नई दिल्ली में दंत शल्य चिकित्सक **डॉ. निमिष निमेय** (पौत्र स्व. डॉ. नेमीचन्द जैन शास्त्री तथा सुपुत्र डॉ. नलिन शास्त्री) को उनके आलेख 'The impact of Technology on Society' हेतु उपराष्ट्रपति श्री भैरोंसिंह शेखावत द्वारा भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद के अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

गणतन्त्र दिवस पर **डॉ. वी. एस. मेहता**, अध्यक्ष न्यूरोसर्जरी विभाग, एम्स, को **पद्मश्री**; **श्री एस. के. जैन**, आई. जी., एस. पी. जी., को **राष्ट्रपति स्वर्णपदक** तथा डॉ. रवि कासलीवाल, निदेशक कॉर्डियार्लोजी, एस्कार्ट हास्पीटल, को **डॉ. बी. सी. राय राष्ट्रीय पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

श्री दुलीचंद जैन, चेन्नई, को राजीव गांधी राष्ट्रीय युवा विकास संस्थान, तमिलनाडु की कार्यकारिणी का सदस्य पुनः नामित किया गया।

श्री अरविन्द कुमार जैन, **पुलिस महानिरीक्षक आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ उ. प्र.**, को २४ फरवरी को वार्षिक पुलिस परेड के अवसर पर लखनऊ में राज्यपाल श्री टी. वी. राजेश्वर द्वारा **राष्ट्रपति पदक** से सम्मानित किया गया।

श्री सुरेश जैन, मारौरा (शिवपुरी), को **वर्ष २००४ का ऋषभदेव विद्वत् महासंघ पुरस्कार** देने की घोषणा की गई।

कवि, आलोचक एवं रंगकर्मी पद्मश्री **श्री नेमिचन्द्र जैन** को हिन्दी भाषा और साहित्य में उत्कृष्ट योगदान हेतु **हिन्दी अकादमी का वर्ष २००४-०५ का 'शलाका सम्मान'** प्रदान किया गया।

श्री दौलत सिंह सिंघवी, उदयपुर, को ग्लोबल इकोनामिक काउन्सिल नई दिल्ली द्वारा बैंकाक (थाईलैण्ड) में 'अन्तर्राष्ट्रीय गोल्ड स्टार मिलिनियम एवार्ड' से सम्मानित किया गया।

विधिवेत्ता एल.एम. सिंघवी को **"वर्ष २००२ का उपाध्याय ज्ञानसागर श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार"** प्रदान किये जाने की घोषणा की गई।

वर्ष २००४ के श्रुत संवर्धन पुरस्कारों से (१) **डॉ. भागचंद जैन 'भागेन्दु', दमोह** (२) **पं. सुमतिचन्द जैन शास्त्री, मुरैना** (३) **श्री जमनालाल जैन, सारनाथ**

(वाराणसी), (४) **डॉ. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर** और (५) **डॉ. दयाचंद जैन साहित्याचार्य, सागर** को तथा सराक पुरस्कार २००४ से दिगम्बर जैन समाज केसरगंज, अजमेर को सम्मानित किया गया।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये **शोधादर्श** परिवार हार्दिक अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

शोक संवेदन

७ नवम्बर, २००४ ई. को सौ वर्षीय मूर्धन्य विद्वान **पं. कमल कुमार शास्त्री, न्यायालंकार** दिवंगत हो गये।

११ दिसम्बर को पचेवर (टोंक) में ६४ वर्षीय धर्मनिष्ठ श्रावक **श्री गट्टूलाल जैन अग्रवाल** का निधन हो गया।

२० जनवरी, २००५ ई. को, जोधपुर में ज्ञानगच्छ के श्रुत सूर्य **श्री चम्पालाल 'चम्पक'** म. सा. का देवलोकगमन हो गया।

१४ फरवरी, २००५ ई. को राज्यसभा सदस्य, पद्म विभूषण, ज्ञानपीठ एवं अन्य प्रतिष्ठित साहित्यक पुरस्कारों से सम्मानित ७६ वर्षीय लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार **डॉ. विद्यानिवास मिश्र** का कार दुर्घटना में आकस्मिक निधन हो गया।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त दिवंगत महानुभावों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिरशांति और सद्गति के लिये जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है तथा शोक संतप्त उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

श्री श्रीकिशोर जैन, ६५-ए, रशीद मार्केट, दिल्ली-११००५२ ने **शोधादर्श** में प्रकाशित बेबाक टिप्पणियों से प्रसन्न हो उसे भेंटस्वरूप रु. ५०१/- प्रदान किये।

श्री कन्हैयालाल जैन, १ कटारी टोला, चौक, लखनऊ, ने अपने सुपौत्र चि. ऋषभ जैन के विवाह के उपलक्ष्य में **शोधादर्श** को रु. २५०/- भेंट किये।

श्री ताराचंद अग्रवाल, धर्मेन्द्र मेडिकल स्टोर, पचेवर (टोंक) ने श्री गट्टूलाल जैन अग्रवाल की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. १००/- भेंट किये।

डॉ. शशि कांत-रमा कान्त जैन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ ने अपने पूज्य पिताजी इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की ६३वीं जन्म जयन्ती पर उनकी स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५१/- भेंट किये।

पाठकों के पत्र

शोधादर्श- ५४ में 'गुरुगुण-कीर्तन' में श्री रमा कान्त जैन का 'गुरुणां गुरुः गोपालदास वरैया' लेख पढ़ा। एक भूली स्मृति जाग उठी। काश ! गुरुगुण-कीर्तन सदैव सार्थक रहे।

- श्री रामजीत जैन, ग्वालियर

शोधादर्श- ५४ में अनेक रचनायें विचारप्रधान हैं। सबसे बड़ी बात है वर्ष का लेखा-जोखा। रमा कान्त जी के दो लेख-जनगणना और कथाशिल्पी ऋषभचरण जैन नई जानकारी देते हैं। सार और सारांश में शोधादर्श में शोध और बोध दोनों प्रकार की सामग्री सम्पादित है।

- डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, अलीगढ़

शोधादर्श नवम्बर-२००४ अंक में 'गुरुणां गुरुः गोपालदास वरैया' लेख पढ़ा, अच्छा लगा। ज्ञानवर्धक एवं मार्गदर्शक है। वे उन्मुक्त चिन्तक थे। उनके बारे में बहुत सुना था, सही जानकारी उक्त आलेख से हुई। श्री रमा कान्त की क्षणिकाएं व्यंग्यात्मक होती हैं, गहरा घाव करती हैं। परन्तु समाज संवेदनहीन होता जा रहा है। मर्यादाएं स्खलित हो रही हैं। सम्पादकीय अद्भुत है।

पूर्व अंक में श्री नाथूराम प्रेमी जी के जीवन का आलेख भी रुचिकर एवं प्रेरणादायक था। उनकी श्रमसाधना एवं निस्पृहता नमनीय है।

-डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श- ५४ प्राप्त हुआ। प्रत्येक अंक कुछ नवीन रोचक एवं पठनीय अथच मननीय सामग्री लेकर उपस्थित होता है। सम्पादक मण्डल की कर्मनिष्ठा का यह सुस्पष्ट प्रमाण है। विशेषतः प्रत्येक समाज की भांति जैन समाज में भी जो विसंगतियां एवं दोष उत्पन्न होते हैं, उन्हें शोधादर्श निर्भय होकर रेखांकित करता है, परिमार्जन की दृष्टि से।

- डॉ. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, वाराणसी

'शोधादर्श' के प्रायः प्रत्येक अंक में शोध हेतु किये गये कार्य व शोध-कृति का उल्लेख और शोध-सारांश की प्रस्तुति सराहनीय है।

- डॉ. रत्नलाल जैन, हाँसी

शोधादर्श- ५४ में गुरु गोपालदास वरैया पर लेख अच्छा लगा। मुनिचर्या पर सम्पादकीय समयोचित है।

-श्री शांतिलाल जैन बैनाड़ा, आगरा

पाया 'शोधादर्श' अंक, चौवन गुण सागर।
'ऋषभ जैन जी' कथा शिल्प में दिखे उजागर।।
मिले 'बसावन लाल', चित्र-शिल्पी गुण ज्ञानी।
'रमाकान्त' ने है अतीत, की ख्याति बखानी।।
रुचिकर क्षणिका गीत लेख सब ज्ञान निखारें।
लेख मध्य 'शशिकान्त' पुरातन बात विचारें।।
परिचय अजित प्रसाद जैन का सुन्दर पाया।
ज्ञान-पिटारी अंक, दयानंद के मन भाया।।

- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', लखनऊ

अंक ५४ हाथ में आते ही आद्योपांत पढ़ गया। मन अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ। समाज में पत्र-पत्रिकाएं तो बहुत निकल रही हैं किन्तु आपकी पत्रिका अनुपम है। लोकलाज, परमोच्च पद की गरिमा एवं समाज भय के कारण जो भीषण विकार चर्चा में भी लाने में साधारण श्रावक सहमता है उन पर आपने सविस्तार चित्रण कर समाज का सचमुच परोपकार किया है। साहस के साथ यथास्थिति का निरूपण निःसन्देह सराहनीय है।

- श्री नरेन्द्र जैन, माधवनगर, ग्वालियर

'शोधादर्श' में प्रकाशित बेबाक टिप्पणी कभी-कभी पढ़ने में आ जाती है। मन खुश होता है कि जैन पत्रकारिता जीवित है।

- श्री श्री किशोर जैन, दिल्ली

चौव्वन शोधादर्श का प्राप्त हुआ शुभ अंक,
हुआ प्रफुल्लित मन मेरा पढ़ा आदि से अन्त।
'गुरु गुण कीर्तन' हित चुना रमा कान्त ने खास,
'गोपालदास' के चरित पर डाला विशद प्रकाश।
णमोकार के मंत्र से संबंधित कुछ कथ्य,
'शशिकान्त' जी ने हमें बतलाया नव तथ्य।
श्री 'सुरेश' जी ने किया समयोचित उल्लेख,

जीवन 'अजित प्रसाद' का परिचय दिया विशेष।
हैं 'महेन्द्रसागर' हमें कहते यह ललकार,
अब भी सोया क्यों अरे सूरज आया द्वार।
'रमाकान्त' की क्षणिकाओं का कैसे हो उल्लेख,
सुमनों में कांटे उन्हें दिखते आज विशेष।
'पूजा जैन' बता रहीं ऐसी कुछ पहचान,
गम पूरित मुख पर पुनः छा जाये मुस्कान।
दयानन्द जड़िया यहाँ करके सहज प्रणाम,
बतलाते वे हैं हमें महावीर गुण धाम।
'तीर्थंकर स्मृति केन्द्र' पर 'अजित प्रसाद' का लेख,
विस्तृत कार्य कलाप का करता है उल्लेख,
आय-व्ययक के आंकड़े किए प्रकाशित सार,
साफ स्वच्छ है संस्था कुछ भी नहीं विकार।
पिछले अंकों की विषय सूची लेखक नाम,
अति उपयोगी सार्थक बहुत आयेगी काम।
अन्य सभी स्तंभ यथावत देते हमें जानकारी,
ज्ञान समाया है उनमें वे निश्चित बहुत लाभकारी।

- डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त', लखनऊ

शोधादर्श- ५४ में गुरुगुण-कीर्तन, जनगणना-२००१ के अनुसार भारत में जैन धर्मानुयायी, क्षणिकायें, कथा शिल्पी ऋषभचंरण जैन तथा कतिपय पुस्तक समीक्षाओं की प्रसव-वेदना रमा कान्त जी की लेखनी को ही वहन करनी पड़ी, परन्तु उससे समाज और साहित्य का उपकार हुआ है। कथा शिल्पी ऋषभचरण जैन लेख अच्छा है। पूजा जैन, डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया और अबोध जी की रचनाएं सुन्दर तथा प्रेरक हैं। रमा कान्त की क्षणिकाओं में समाज पर तीखा व्यंग्य है। अन्य लेख भी पठनीय एवं मननीय हैं।

- डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

शोधादर्श- ५३ में 'अरहंत और अरिहंत' शब्दों के प्रयोग पर चर्चा थी, अंक ५४ में भी इन शब्दों को केन्द्रित कर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। व्याख्याकार अपने मतानुसार शब्दार्थ व्यक्त करता है, परंपरा भी साथ जुड़ी रहती है। साधुओं में

शिथिलाचार के प्रसंग दुखद हैं। त्याग या निवृत्ति का मार्ग अपनाना 'तलवार की धार पे धावनो है।' संयमी बनना सरल नहीं। अपरिग्रह जैन धर्म का आधार है।

- डॉ. निज़ामउद्दीन, बालैनी (मेरठ)

प्रस्तुत अंक में डॉ. शशि कान्त के खोजी लेख, भाई साहब अजित प्रसाद जी की समीक्षात्मक टिप्पणियों तथा रमा कान्त की गुदगुदी करने वाली क्षणिकाओं के लिये ढेर सारी शुभकामनायें!

- श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, नई दिल्ली

शोधादर्श- ५४ आद्योपान्त अवलोकित कर आनन्दानुभूति हुई। गुरुगुण-कीर्तन में गुरुणां गुरुः गोपालदास बरैया पर जानकारी अच्छी और प्रामाणिक है। डॉ. शशि कान्त द्वारा मथुरा से प्राप्त सं. २६६ के अभिलेख का प्रस्तुतिकरण अत्युत्तम है। श्री रमा कान्त जैन की क्षणिकाएं पर्याप्त विचारोत्तेजक लगीं। समासतः विभिन्न उपयोगी स्तम्भों से समृद्ध यह अंक 'शोधादर्श' को श्रेष्ठ शोध पत्रिकाओं में सम्मानित स्थान देता है।

- डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, अजीतमल (औरैया)

शोधादर्श- ५४ में समाहित सभी सामग्री पठनीय, मननीय, चिन्तनीय, संग्रहणीय एवं प्रशंसनीय है, विशेषकर श्री रमा कान्त जैन द्वारा प्रस्तुत जनगणना-२००१ के अनुसार भारत में जैन धर्मानुयायी की जानकारी आकर्षित करने के साथ पूरे जैन समाज को कुछ सोचने पर मजबूर करती है। सम्पादकीय तो शिथिलाचारी सन्तों एवं श्रावकों की पोस्टमार्टम रिपोर्ट लगता है और समय रहते चेतने की प्रेरणा भी देता है।

- सन्त ॐ पारदर्शी, उदयपुर

शोधादर्शः भवेत्भव्यः इत्थमभिलषिम्मया।
जैनधर्मप्रसाराय भवेच्च मंगलायतनम् भुवि।
चतुश्पंचाशत् अंकेस्मिन् विविधासूचनाशुभाः।
भविष्यन्ति ज्ञानदा सर्वा यथा नाम तथा गुणः।
स्तवनम् पार्श्वनाथस्य नेमिनाथ उभयोरपि।
जीवन्याजितप्रसादस्यवसावनलालपरिचयः।
कुण्डग्रामंपुरं रम्यं क्षणिकाः दीपावली तथा।
शोधसार नवावार्ताः सर्वे भान्ति पुरस्सरम्।

- डॉ. राम सजीवन शुक्ल, कौंच (जालौन)

शोधादर्श का अंक ५४ मेरे समक्ष है। हर अंक की भांति इस अंक को भी एक ही बैठक में पूरा पढ़ गया हूँ। जैन पत्रकारिता जगत में कुछ ही गिनी चुनी पत्रिकाएं हैं जो यथार्थता का दिग्दर्शन कराकर सत्य बात लिखने से डरती नहीं हैं।

गुरुगुण-कीर्तन में गुरुणां गुरुः गोपालदास बरैया का जीवन चरित्र पढ़कर श्रद्धान्वित हुआ हूँ। सम्पादकीय के अन्तर्गत सम्पादक महोदय ने जो यथार्थता का चित्र प्रस्तुत किया है वह अपने आप में कटु सत्य है।

महावीर के अवतार स्वरूप आचार्य की चर्चा इस समय जोरों पर है किन्तु कोई भी संस्था यथार्थता को ज्ञात करने के लिए अग्रसर नहीं है।

श्री सुरेश जी सरल का लेख 'नौवे दशक की ओर : श्री अजित प्रसाद जैन' मर्मस्पर्शी लगा। ज्ञात होता है कि अजित प्रसाद जी के द्वारा जैन समाज एवं साहित्य की सेवाएं असाधारण व्यक्तित्व की परिचायक हैं। हमारी तो यही भावना है कि वे अपनी लेखनी से शोधादर्श को सदैव पुष्पित, पल्लवित करते रहें। इस अंक की सम्पूर्ण सामग्री, महत्वपूर्ण है।

– ब्र. संदीप 'सरल', सम्पादक, अनेकान्त दर्पण, बीना

शोधादर्श– ५४ में आदरणीय अजित प्रसाद जैन का लम्बा सम्पादकीय पढा, इसमें अनेक तथ्य चौकाने वाले थे कि किस प्रकार दिगम्बर जैन मुनियों की क्रियाओं में शिथिलता आ रही है। साथ ही साथ समाज के मठाधीश भी इनको अपनी मौन स्वीकृति प्रदान करने में नहीं चूकते हैं। भाई शशि कांत का मथुरा का अभिलेख एवं जनगणना पर भाई रमा कान्त का लेख ज्ञानवर्द्धक है।

– श्री सनत जैन, रायपुर (छत्तीसगढ़)

शोधादर्श– ५४ के सभी लेख नये कलेवर को संजोये हुए हैं। 'अरिहंत और अरहंत' के बारे में जानकारी अच्छी लगी। क्षणिकाएं भी हृदय को भायीं। 'समाचार विमर्श' ने हृदय को काफी उद्वेलित किया। सजग प्रहरी के रूप में आपने अपनी लेखनी से समाज को जगाने का जो प्रयास किया उसके लिये बधाई।

– श्री रजनीश शुक्ल, उदयपुर

शोधादर्श– ५४ शोध की गरिमापूर्ण सामग्री से समन्वित है। स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का आलेख तथा मथुरा के एक जैन अभिलेख (सं. २९९) सम्बन्धी डॉ. शशि कान्त का आलेख 'अरहंत' शब्द को शुद्ध और ऐतिहासिक होने की संपुष्टि करते हैं। डॉ. शशि कान्त ने अपने आलेख में कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों को

भी उजागर किया। डॉ. (कु.) नीलम जैन ने वेदव्यास कृत और जिनसेन कृत हरिवंशपुराणों का तुलनात्मक अध्ययन करके एक महत्वपूर्ण शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया, एतदर्थ उन्हें बधाई! डॉ. नीलम जैन और श्री सुखमाल चंद जैन ने दीपावली मनाने के दो भिन्न-भिन्न कारण बताए हैं। जैन हरिवंशपुराण (८वीं शती ई.) में दीपावली मनाने का उल्लेख भारतीय मूर्तिकला के पुरातात्विक साक्ष्यों से सटीक बैठता है। लक्ष्मी और गणेश के साथ-साथ मूर्तांकन अद्यावधि ८वीं शती और उसके बाद के ही मिले हैं, इससे पूर्व के नहीं। श्री सुखमाल चंद के अनुसार जिस दिन भगवान महावीर का निर्वाण हुआ उसी दिन गणधर गौतम को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और उसी दिन से लक्ष्मी-गणेश के पूजन वाली दीपावली का प्रचलन हो गया। परन्तु विचारणीय यह है कि भगवान महावीर के निर्वाण के समय गणेश-लक्ष्मी की न तो मूर्तियां बनती थीं और न उनके उस समय साथ-साथ पूजन का कोई ऐतिहासिक उल्लेख मिलता है।

श्री सुरेश जैन 'सरल' ने शोधादर्श के सुविज्ञ सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर मनहर भाषा-शैली में भावपूर्ण, रोचक एवं तथ्यपरक परिचय प्रस्तुत किया है।

- डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, लखनऊ

शोधादर्श नवम्बर २००४ अंक सदा की भांति सरस, सुन्दर सामग्री से पूर्ण है। गोपालदास वरैया से प्रथम बार परिचय हुआ। उनके सद्गुण और व्यक्तित्व ने प्रभावित किया। बन्धुवर अजित प्रसाद जी के बारे में कुछ विस्तार से जानने को मिला। 'आओ कुछ ऐसा करें' व श्री रमा कान्त की क्षणिकाएं काव्य अंश में प्रेरणास्पद हैं। जनगणना के अनुसार भारत में जैन धर्मानुयायियों की जानकारी ज्ञानवर्द्धक है और कथाशिल्पी ऋषभचरण सम्बन्धी संक्षिप्त परिचय रोचक है। 'साहित्य-सत्कार' के अन्तर्गत पुस्तकों की समीक्षा उन्हें देखने की उत्सुकता जगाती है और 'समाचार विमर्श' चिन्तन को प्रेरित करता है।

- श्री मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर

शोधादर्श ५३ तथा ५४ देखकर अतीव प्रसन्नता हुई। डॉ. ज्योतिप्रसाद जी इतिहासज्ञ द्वारा रोपित शोधादर्श रूपी वृक्ष अब पूर्ण विकसित भीमकाय वृक्ष हो गया है। कुछ स्थायी स्तंभ यथा-गुरुगुणकीर्तन, सम्पादकीय, साहित्य-सत्कार, समाचार-विमर्श, चिन्तन कण, अब स्वाथ्य चर्चा और समाचार विविधा शोधादर्श की आत्मा सदृश हैं। पूज्य तारणस्वामी तथा गोपालदास जी बरैया पर साहित्यकार रमा कान्त जी की मंजी

हुई लेखनी ने आकृष्ट किया है। समाचार विमर्श कुछ खटकने वाली प्रवृतियों पर अंकुश/चाबुक का कार्य करती कड़वी दवा कहें तो उपयुक्त होगा किन्तु इसका असर तथाकथित बुद्धिजीवियों पर न के बराबर होता/होना है यह सुनिश्चित है।

शोधादर्श सचमुच आदर्श शोध का जीवन्त प्रतिनिधि है।

– श्री मोतीलाल जैन 'विजय', कटनी (म.प्र.)

शोधादर्श अंक ५४ की प्रायः सम्पूर्ण सामग्री सर्वथा उपादेय, संग्रहणीय चिन्तनपरक तथा सुधी पाठकों की अमूल्य निधि है डॉ. ज्योति प्रसाद जी का लेख 'अरहंत-अरिहन्त', पं. सुरेश 'सरल' जी का तथ्यपरक मान्य अजित प्रसाद जी पर जीवन्त चित्रण, रमा कान्त जी की गुरु गोपालदास जी पर सधी लेखनी, आचार्य विद्यानन्द जी का बोधपरक उपदेश, जैन चित्रकार बसावन लाल जी संबंधी टिप्पणी जिन पर बादशाह अकबर प्रसन्न रहता था, बड़ी मनोहारी लगी।

'समाचार विमर्श' के अन्तर्गत बालिका दीक्षा, निर्वाण लाडू चढ़ाने पर ताण्डव नृत्य, परिग्रहवान भट्टारक, लाखों रुपयों की चातुर्मास आमंत्रण पत्रिकाएं पढ़कर सोचना पड़ा हमें कहां ले जा रहे हैं ये सब हमारे कार्य? इन पर सामाजिक केन्द्रीय नेतृत्व जागरूक हो।

– श्रीमती विमला जैन, मुकुल जैन, कटनी (म.प्र.)

शोधादर्श के अंक निरन्तर मिल रहे हैं। शोधादर्श स्वस्थ पत्रकारिता की मिसाल है। उसकी बेबाक टिप्पणियां आदर्श समाज तथा संस्कृति की रक्षा के लिये अमृत तुल्य हैं।

– डॉ. ऋषभचन्द्र जैन, वैशाली

शोधादर्श की सामग्री कुछ तो बहुत स्तरीय है, सम्पादकीय क्रान्तिकारी है हालाँकि कुछ बिन्दुओं पर मेरी राय पृथक् है।

– श्री कैलाश मड़वैया, भोपाल

शोधादर्श में शिथिलाचार के विरुद्ध निरन्तर लिखा जाता रहा है। कुछ अन्य पत्रिकाओं में भी लिखा जाता रहा है। लेकिन समाज पर उसका कोई असर पड़ता दिखाई नहीं दे रहा है।

– डॉ. अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ–२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिए। यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।*

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की दो *प्रतियां* भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

– प्रधान सम्पादक